१ੴ सतिगुर प्रसादि।।

बिजय सिंह

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली

१ੴ श्री वाहिगुरु जी की फतह॥

कहु नानक गुर बंधन काटे
बिछुरत आनि मिलाइआ॥

बिजय सिंह

भाई वीर सिंह

अनुवादिका
डॉ॰ तेजिन्दर पाल कौर

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली

बिजय सिंह

भाई साहिब भाई वीर सिंह

अनुवादिका :
डॉ. तेजिन्दर पाल कौर

हिन्दी में प्रथम संस्करण : २००२

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : ६५/-

प्रकाशकीय

कहते हैं अगर किसी कौम को निर्बल करना हो तो आसान उपाय है कि उस कौम की भाषा तथा संस्कृति को नष्ट किया जाये। ठीक यही दशा सिख राज्य के पतन के बाद सिखों की हुई। महाराजा रणजीत सिंह के समय से ही राज्य पाट से सम्बंधित वे सारे रीति-रिवाज जिनकी गुरु साहिबान ने निंदा की थी, वापिस सिख समाज पर हावी होने लग गए थे। महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के लगभग एक दशक के बाद पंजाब को अंग्रेज़ी राज्य में शामिल कर लिया गया और सिख राज्य की आखिरी निशानी दलीप सिंह को इंग्लैंण्ड भेज दिया गया और फिर ईसाई बना दिया गया। सिखों के पवित्र स्थान श्री हरिमंदिर साहिब तथा और गुरुधामों के प्रबन्ध के लिए अंग्रेज़ों ने सरबराह नियुक्त कर के अपरोक्ष तौर पर अपना कब्ज़ा कर लिया। ईसाई मिशनरियों तथा आर्य समाजी प्रचारकों ने सिख धर्म पर कई तरह के घातक हमले करने आरम्भ कर दिये। सिख कौम को संगठित करके, उस को पुर्न-सजीव करने के लिए सिंघ सभा लहर की सथापना हुई।

भाई वीर सिंह साहिब ने महसूस किया कि कौम को अपनी विरासत की पहचान करवाने के लिए पंजाबी भाषा तथा सिख एतिहास से सुपरिचित रखना बहुत ज़रूरी है। अपनी कलम द्वारा भाई साहिब ने न केवल पंजाबी भाषा को एक माननीय स्थान प्राप्त करवाया बल्कि सिख इतिहास तथा सिख परम्पराओं को भी पुर्न-सजीव किया। भाई साहिब ने बहुत सारी सिख एतिहासिक जीवनियों को भी अपने लेखन का विषय बनाया। इन एतिहासिक पात्रों के आदर्शों को मुख्य रखते हुए भाई साहिब ने 'बिजय सिंह', 'सुंदरी', 'सतवंत कौर' तथा 'बाबा नौध सिंह' आदि जीवनियों की रचना की। 'बिजय सिंह' जहाँ पर एक तरफ़ नैतिक मूल्यों का नमूना है, वहीं दूसरी ओर सिख आदर्शों का सजीव प्रमाण भी है। इसी भावना के अंतर्गत 'बिजय सिंह' गुरु साहिबान के दिखलाये हुए मार्ग पर चलते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

भाई साहिब की बहुत सारी रचनाएँ हम हिन्दी में छाप चुके हैं। पाठकों की माँग पर 'बिजय सिंह' को भी हिन्दी में छापने की खुशी ले रहे हैं।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली

१ੴ वाहिगुरु जी की फतह॥

भूमिका

पंजाब का इतिहास किसी-किसी ने लिखा है, परन्तु सिक्खों से सम्बन्धित सारे हालात अभी तक संशोधित करके नहीं लिखे गए हैं, इसीलिए इनके हालात अभी तक पूरी तरह प्रकाश में नहीं आ पाए हैं। जो आए हैं कम हैं, बहुत कुछ बाकी रह गया है तथा बहुत कुछ दोषपूर्ण प्रगट हुआ है, उसकी जाँच-पड़ताल बहुत बड़ा काम है। इस पुस्तक में किसी एक समय के कुछ हालातों को इकट्ठा करने का यत्न ऐसे किया गया है जैसे खेत में बिखरे दानों को इकट्ठा करना। कौम की दशा गिरावट वाली है, यह (पुस्तक) एक आतुरालाप है कि कहीं किसी पुरातन दशा को परखकर कौम में उत्साह भरे ताकि उसमें जीवन की तरंग लहराने लगे। पुस्तक लिखने का प्रयोजन कोई स्वार्थ नहीं, न ही कोई विद्वता प्रदर्शन है, पंथ की ध्वस्त इमारत को पुन: निर्मित करने में रामचन्द्र जी के पुल पर गप्पियों द्वारा मिट्टी डालने के यत्न की तरह सेवा में एक छोटा-सा फर्ज़ अदा करने का आतुरालाप है। बल्कि पंथ की उन्नति के पुल बाँधने में इस पुस्तक लिखने का उद्यम उस गप्पी की हिम्मत से भी थोड़ा और सेवा उसकी सेवा से इतनी कम है जैसे गणित

विद्या में शून्य '०' की कीमत होती है, जो शक्ल में तो दिखाई देती है परन्तु मूल्य कुछ नहीं रखती। हाँ, यदि कलगीधर जी की कृपा से एक '१' उसके साथ मिल जाये तो शून्य '०' भी दूसरे अंगों (अंकों) के साथ मिलकर कीमत वाला हो जाता है।

इस पुस्तक के लिखने में, इस संसार से स्वर्ग सिधार गए बुज़ुर्गों से सुने समाचार, दोनों पंथ प्रकाश, ख़ालसा तवारीख, प्रिंसप, कनिंघम, मुहम्मद लतीफ़, मैलकम, मैगरेगर तथा अन्य विद्वानों की पुस्तकों से सहायता ली गई है, जिनका हार्दिक धन्यवाद है। कई समाचार स्रोतों, कई गीतों से लिये हैं तथा अव्यवस्थित स्थानों पर श्रङ्खलाएँ आप जोड़ी हैं। इतिहास के अन्य स्रोत खोजने का समय नहीं है, पंथ के लिए आवश्यकता प्रबल और तीव्र है, इसलिए इतिहास और कथा प्रसंगों आदि के मिश्रण से यह सज्जा सजायी गई है, कहीं-कहीं काव्य के अलंकार इसलिए दिखाये हैं क्योंकि बहुत लोग पंजाबी को गँवारू बोली कहकर उलाहना देते हैं कि रचना के आभूषण इस बोली में नहीं पहनाये जा सकते, दूसरे यह कि पंजाबी की उन्नति भी देश और पंथ की उन्नति का एक अंग है।

पंथ की वर्तमान स्थिति पिछले कारनामों को विस्मृत कर पतन की ओर दौड़ने की दिखाई देती है, इस पुस्तक में यही बल दिया गया है और लिखने का प्रयोजन भी केवल इतना ही है कि किसी तरह भाइयों को अपने पैरों पर संभलने का ढंग आ जाये, वह ऊँचा आदर्श इंसानियत का, वह बेमिसाल मनुष्य जो गुरु गोबिन्द सिंह जी ने संसार में निर्मित (रच) कर

दिखाया, वह अपने निर्मल एवम् पवित्र वास्तविक रूप में कायम रहे। ख़ालसा एक मुक्त पुरुष है, आप अन्तः एवम् बाह्य दोनों रूपों में सुखी है तथा सम्पूर्ण सृष्टि के लिए सुखदायी है। अभय है, अपराजित है, परन्तु भय नहीं देता, सीनाज़ोरी नहीं करता। किस प्रकार दुखों में खालसा अपने नियमों पर टिका रहा, यह पुस्तक उसके चित्र दिखायेगी। इस में वर्णित समाचार हमें शिक्षा देते हैं कि अपने पूर्वजों की तरह हम नम्रता, आश्रय और सारे दैवी गुणों का पुञ्ज बनकर उच्च संकल्पों वाले इंसान बने रहें।

गुणीजन गुण ग्रहण कर, अवगुणों की सूचना अवश्य दें।

—कर्त्ता

੧ੴ वाहिगुरु जी की फतह॥

बिजय* सिंह

–कांड १–

लाहौर शहर युगों से एक भारी अखाड़ा (रणभूमि) रह चुका है, जिसका पूरा विवरण लिखने के लिए बहुत समय और बड़े आकार वाली पुस्तक चाहिए। हम यहाँ संवत् १८०८ और १८०९ वि॰ के आसपास के कुछ थोड़े से समाचार बताते हैं।

मीर मन्नू[१] ने काबुल के बादशाह, अहमदशाह दुर्रानी से पराजित होकर समझौते के लिए विनती की, जो पचास लाख रुपया तथा अन्य माल असबाब देकर स्वीकृत हुई। मीर मन्नू लाहौर के हाकिम पहले जैसे, दृढ़ रहा[२] महाराजा कौड़ा मल्ल; खालसों का सच्चा मित्र और दीवान लखपत पक्का दुश्मन, दोनों इस सांसारिक

---

* हिन्दी भाषा में 'विजय' शब्द प्रयुक्त होता है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में 'बिजय' चूँकि एक पुरुष (नायक) का नाम है इसलिए नाम में परिवर्तन उचित न समझते हुए इसे बिजय" ही रहने दिया गया है।

१. मीर मन्नू जिसका नाम मीर मुअय्यनुल मुल्क था, वजीर कमरुद्दीन का पुत्र तथा पंजाब का शासक था। इसने अब्दाली के पहले आक्रमण दौरान १८०५ वि॰ (१७४८ ई॰) में उसको पराजित करके भगा दिया था तथा इसी बहादुरी प्रदर्शन के कारण लाहौर का सूबा (अधिकारी) बना था। इसीलिए वर्षा ऋतु के बीतने पर दुर्रानी फिर चढ़ाई करके आ गया और मन्नू ने कुछ परगनों का राजकर देकर समझौता कर लिया था। यह तीसरा आक्रमण था सन् १८०९ वाला, जिसका कुछ ब्यौरा 'सुन्दरी' में आ चुका है। इसी में महाराजा कौड़ा मल्ल जी शहीद हुए थे (१७५१-५२ ई॰)।

२. मुहम्मद लतीफ, पृष्ठ २२४

क्रीड़ास्थली में अपना-अपना योगदान डाल कर, अकाल पुरुष (परमात्मा) के सन्मुख आदर (प्रशंसा) और अनादर का स्वाद चख रहे थे। खालसों का सरकार में कोई मित्र नहीं था। मीर मन्नू चाहे सिक्खों से कई बार मदद ले चुका था परन्तु वह मतलब निकालने के लिए किया गया व्यवहार था, उसके कुटिल हृदय में वैर विरोध ने साँप के ज़हर की तरह गहरे थैले भर रखे थे, जो फिर शासक बनकर तथा सिर पर आई मुसीबत के हाथों साफ-साफ बच जाने के कारण वह ऐसा निडर हो गया कि पहले से भी अधिक अत्याचार करने लगा।

इस समय लाहौर में, चूहड़ मल्ल नामक एक बहुत बड़ा साहूकार तथा सरकारी पदाधिकारी, रिश्वतों का अटूट भण्डार, अत्याचार और धर्मान्धता का अवतार, बसता था। इसका पुत्र रामलाल अमृतसर के माझा इलाके में किसी पद पर सरकारी नौकर था।

एक दिन की बात है कि संध्यावेला में दीवान साहब के घर, अन्तः पुर यानि कि ज़नानखाने में बहुत गहमा गहमी हो रही थी, दीवान साहब एक ईरानी कालीन पर गावतकिये से टेक लगाकर बैठे हुए थे, सामने ढलती अवस्था की उनकी पत्नी, एक सुनहली पीढ़ी पर बैठी पौत्र की सगाई का समाचार बयान कर रही थी। बेटी पास में बैठी वस्त्र पर बेल-बूटे काढ़ रही थी और पुत्रवधू दहलीज पर चमेली की तरह सिर झुकाये लाल बाग[१] में लिपटी बया के घोंसले जैसा घूँघट निकाले धरती से बातें कर रही थी कि एक परिचारिका ने आकर सूचित किया कि पुरोहित जी आए हैं और कहते हैं कि 'बहुत ज़रूरी काम है।' दीवान साहब ने कहा कि 'उनको यहीं ले आओ' और दूसरी सेविका को इशारा किया, जिसने झटपट (तुरन्त) एक चंदन की चौकी रख उस पर गलीचा बिछाया और एक तकिया रख दिया। मिश्र जी अंदर आये।

---

१. फुलकारी कढ़ाई वाली चादर।

शरीर पतला, रंग पीला, शक्ल तीखी तथा चेहरे पर कुछ-कुछ ऐसे चिह्न दिखाई देते थे जो दिल की पेंचदार बनावट का आभास देते थे। आप अंदर आकर चौकी पर सुशोभित हुए। दीवान साहब और सारे परिवार ने माथा झुकाकर प्रणाम किया, पंडित जी ने आशीर्वाद देते हुए सबको बैठने का इशारा किया, फिर बोले 'दीवान साहब! बहुत आश्चर्य की बात है। (कंठ अवरुद्ध हो गया, सिर घुमाकर) हे राम कलियुग आ गया; शास्त्र और वेद सत्य लिख गए हैं कि कलियुग में बहुत अनर्थ होंगे, सो प्रत्यक्ष देख लिया, कलियुग आ गया, घोर कलियुग।'

दीवान (आश्चर्यचकित होकर)-पंडित जी! क्या हो गया है?

मिश्र-क्या कहूँ? होश टिकाने नहीं, जिस समय से बात सुनी है हाथों के तोते उड़ गए हैं। बहुत अनर्थ हुआ, भगवान! भगवान!!

दीवान-मिश्र जी! नारायण के लिए जल्दी बतायें कि क्या हुआ?

पंडित जी की इस घबराहट का प्रभाव स्त्रियों पर ऐसा पड़ा कि वे हथौड़ी की चोट खाये घंटे की तरह थर-थर काँपने लगीं।

मिश्र-महाराज क्या कहूँ? हिम्मत नहीं होती कि ऐसी ख़बर आप मेरे मुँह से सुने; परन्तु क्या करूँ आप का बचाव इसी में है।

दीवान-मिश्र जी! फिर जल्दी बतायें?

मिश्र की आँखों में जल भर आया और रुकी हुई आवाज़ में बोला: यजमान भगवान! राम लाल, राम लाल, राम ला आ घघ (आवाज़ रुक गई)!!

दीवान-हाय! प्यारे राम लाल को क्या हुआ, जल्दी बतायें?

मिश्र-राम लाल सिक्ख हो गया!!

यह ख़बर बिजली की तरह पड़ी। एकदम सारे परिवार की चीखें निकल गईं, हाय-हाय की आवाज़ से कमरा गूँज उठा, नेत्रों ने जल प्रवाह वर्षा ऋतु की बारिश की तरह बहाया, सारे घर में

बहुत शोर होने लगा। मालिकों को देखकर पास खड़ी दासियाँ भी रुक नहीं सकीं, वे भी फव्वारों की तरह फूट-फूट कर रोयीं।

पहले तो मिश्र जी चुप बैठे रहे, फिर कुछ सोचकर उठे और दीवान साहब की पीठ थपथपा कर कहने लगे—दीवान साहब ज़रा होश करें, इस तरह विवश होने पर भारी क्लेश होगा; बाहर शोर मच गया तो नवाब साहब को खबर हो जायेगी फिर आप जानते हैं कि सारे परिवार को मरवाये जाने का ख़तरा है। अब तो बचाव के लिए उपाय सोचने और करने का समय है, रोने का नहीं। यह सुनकर सब चुप हो गये, सेविकाओं को किसी बहाने बाहर भेजा और सलाह मशवरा होने लगा।

दीवान—मिश्र जी! पहले यह बतायें कि यह उपद्रव हुआ कैसे?

मिश्र—जी होना कैसे था? संगति द्वारा, इस संगति ने बरबाद किया। मैंने आपको पहले भी रोका था कि अमृतसर के करीब मत भेजो, लड़का बिगड़ जायेगा। वह तो यहाँ ही सिक्खों का मित्र था; वहाँ जाकर कैसे बचता। आपको पता है या नहीं कि पिछले कत्लेआम के दिनों वह सिक्खों पर कितना तरस करता रहा है? मैं आपको उन दिनों भी रोकने के लिए कहता था परन्तु आप ने कहा बड़ा होकर आप ही समझ जायेगा।[१]

दीवान—अब इस बुरे समय में क्या करें। हाय पुत्र! तुमने क्या किया?

मिश्र—अब कुछ यत्न करो, पहली बात तो यह कि नवाब साहब तक सूचना न पहुँचे।

---

१. उस समय आम हिन्दू जनता में सिक्खों के प्रति कोई नफरत की भावना नहीं थी। सिक्खों पर मुगल सरकार बहुत ज़ुल्म करती थी और साथ ही सम्बन्धियों को दुख मिलता था, इसलिए सिक्ख होने को अथवा सिक्ख बनने को लोग अपने लिए मुसीबतों का सिर आ पड़ना समझ कर कष्ट मानते थे।

दीवान–मेरी तो होश टिकाने नहीं, आप ही कुछ करें।

दीवान की पत्नी–हाँ आप ही मदद करें पंडित जी! हमारी तो किस्मत जल गई।

पुत्री–मिश्र जी! किसी तरह मेरे भाई के प्राण बचाइये!

मिश्र–फिक्र मत करो। दीवान जी! अभी एक भरोसेमंद व्यक्ति को बुलायें जो राम लाल को कल ही यहाँ वापिस ले आये और अंदर बैठ कर समझा बुझा लो। ऐसे बात बाहर नहीं निकलेगी अभी वक्त है अच्छा हो अगर समझ जाये। अगर कुछ देर और सिक्खों के साथ रहा तो फिर उसको समझाने पर भी प्रभाव नहीं पड़ेगा।

दीवान–मिश्र जी! सभी नौकर आपके समक्ष हैं, जो कुछ करना है करो, मेरे होश ठिकाने नहीं।

मिश्र जी उठे और उसी समय घर के भरोसेमंद आदमी संदेशा देकर रवाना किए कि दीवान साहब सख़्त बीमार हैं, राम लाल को याद करते हैं, जैसी भी स्थिति में हो, जल्दी पहुँचे।

पंडित जी यह काम करके फिर अंदर आये। दीवान जी की पत्नी ने कुछ मोहरें आप को भेंट कीं और पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाते हुए कहा कि किसी तरह मेरा लाल (बेटा) मेरे घर एक बार पहुँच जाये। सारे परिवार को प्यार भरा आश्वासन देकर पंडित जी तो घर को विदा हुए और बाद में दीवान के बड़े पुत्र ने आकर हाल सुना, वह भी उदास होकर चला गया। माता पिता के सामने तो रोया था, परन्तु अपनी पत्नी के पास जाकर खिलखिला कर हँसा कि अब सारी जायदाद के हम वारिस होंगे। एक भाई पहले ही नालायक है, एक यह गया-गुज़रा हो गया, बस अब चारों तरफ जागीर हमारी है।

–कांड २–

चार एक दिन बाद की बात है कि दीवान साहब घर के आँगन में सपरिवार बैठे हुए थे। आप इस आँगन में अपने परिवार के बीच बैठे हुए ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे ग्रहण ग्रसित चन्द्रमा बादलों तले आए हुए तारा मण्डल के बीच हो। सभी के दिल राम लाल के सिक्ख बन जाने से ऐसे कुम्हला गए थे जैसे पाला पड़ने पर कमल पुष्प। तीन दिन कलेजे मुट्ठी में लिए, शुभ कामनाएँ करते हुए बीते थे। पल-पल में भय जाग उठता था कि अब भी नवाब साहब के पास कोई चुग़ली ना कर दे। दीवान साहब बीमारी का बहाना बनाकर ही नहीं निकले थे। राम लाल की माँ का हृदय दीवान साहब से अधिक दुखी था। एक तो राम लाल छोटा पुत्र होने के कारण सबसे अधिक प्यारा था। दूसरे इसकी पत्नी, जो एक सहजधारी सिक्ख[१] की पुत्री और गुरुवाणी में श्रद्धा रखने वाली थी, सास की बहुत सेवा करती थी। जहाँ अन्य पुत्रवधुएँ सास के साथ दिखावटी व्यवहार निभाती थीं, वहीं यह सास के साथ माँ से भी अधिक प्यार करती थी, इन्हीं कारणों से माँ को राम लाल सपत्नी, परिवार के अन्य सदस्यों से अधिक प्यारा था।

इस समय दीवान साहब तो बैठे-बैठे तकिये पर सिर रखकर कुछ नींद में मस्त हो गए, उधर से राम लाल उसकी बहू और पोता आ पहुँचे। राम लाल पिता को सुस्ती में आँखें बंद कर के लेटा हुआ देखकर आगे बढ़ा, आहट पाकर दीवान की आँखें खुल गईं। पुत्र का रूप रंग देखकर कलेजे को आग लग गयी। कहाँ वह पतला सूखा सा राम लाल, कहाँ यह बली शेर रूप सिंह बहादुर, सच में

१. सिक्खों का एक वर्ग जो खंडे का अमृतपान नहीं करता, कच्छा और कृपाण की रहत भी धारण नहीं करता परन्तु श्री गुरु ग्रंथ साहब के अतिरिक्त और किसी पुस्तक को अपनी धर्म पुस्तक नहीं मानता।

काया पलट हो गई, शरीर के मोटापे और चेहरे पर छाये प्रताप के कारण तो पहचाना नहीं गया परन्तु उसकी दीनता पूरित आँखों ने दीवान को ज्ञात करवा दिया कि यही नालायक पुत्र है, जिसने सिक्ख बनकर सारे परिवार को खतरे में डाला है। मोह का जोश उठने के स्थान पर क्रोध ने दीवान जी के सिर चढ़ कर ऐसे बुलवाया :– 'दुष्ट! पैदा न होता, निः संतान मर जाती तुम्हारी माँ अथवा तुम्हारे पैदा होने से पहले मैं मर जाता, इस उम्र में मुझे यह घाव दिया है। तुम्हारा सत्यानाश!'

दीवान जी ने अभी पता नहीं कितना ज़हर उगलना था कि अचानक नवाब साहब का बुलावा आ गया। तुरन्त उठे और दीवानखाने में जाकर कपड़े बदलकर नवाब साहब की ओर चले गए। इधर ममतामयी माँ ने उठकर पुत्र को गले लगाया और छाती से सिर लगाकर बैठ गई तथा फूट-फूट कर रोयी। बहनें भी भाई से चिपटकर रोने लगीं। सिंह साहब के हृदय में जहाँ पिता के क्रोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ था वहाँ माता और बहन भाइयों का प्यार पूरे ज़ोर से प्रभाव डाल रहा था, परन्तु सच्चे धर्म से पूरित हृदय में इस मोह के जादू ने ठगने वाला प्रभाव पैदा नहीं किया। कुछ समयोपरान्त पूछने लगे, 'माँ जी! आप विलाप क्यों कर रही हैं?

माँ–बच्चा! तुम्हारे सिक्ख बन जाने के कारण।

पुत्र–क्या सिक्ख होना पाप है?

माँ–नहीं बच्चा पाप क्यों है, बल्कि अच्छी बात है।

पुत्र–और कोई दोष है?

माँ–नहीं बच्चा! उत्तम बात है, जो गुण तुम्हारे अंदर गुरु महाराज की वाणी पढ़कर पैदा हो गए हैं वे सारे परिवार में किसी में भी नहीं हैं। तुम जब पाठ करते थे तब मेरे मन को बहुत प्यारे लगते थे। मैं तो जानती हूँ कि इस घर में जो खुशकिस्मती है तुम्हारे

ही चरणों का दान पुण्य है। जिस दिन से तुम पैदा हुए हो उस दिन से चहल पहल है और (इतना कहकर पुत्रवधू को गले से लगा लिया) जिस दिन से यह प्यारी सुघड़ हमारे घर आई है तब से तो हम बहुत भाग्यशाली हो गए हैं (फिर पौत्र को गोदी में लेकर और प्यार करके) तथा इस लाल (बेटे) ने तो निहाल ही कर दिया है।

पुत्र–माँ जी! फिर इतना दुख क्यों मना रही हैं?

माँ–बच्चा! समय देखकर चलना चाहिए। एक बार एक शेर ने भेड़िये से पूछा था कि भाई मेरे मुँह से बदबू आती है कि नहीं? भेड़िये ने कहा कि 'हाँ महाराज!' शेर ने उसको घुड़कते हुए कहा – 'हे दुष्ट! बादशाह को ऐसे वाक्य बोलता है?' और झपटकर उसको मार गिराया, फिर एक गधे से पूछने लगा : 'क्यों भाई मेरे मुँह में से बदबू आती है'? गधे ने कहा : 'हरे हरे महाराज! आपके मुँह से तो सुगन्ध आती है।' शेर ने कहा : 'ओ गधे! हम बादशाहों के सामने झूठ बोलता है, प्राण नहीं चाहिए?' इतना कहकर उसको भी मार दिया। फिर लोमड़ी की बारी आई, उसको भी शेर ने यही बात पूछी। लोमड़ी बोली 'महाराज! जगत के सिरताज! मुझे कुछ दिनों से जुकाम हो गया है, छींकें आने और नाक बहने से अब नाक पक गया है मुझे गंध नहीं आती अगर दिमाग थोड़ा भी ठीक होता तो अवश्य बता देती'। शेर ने हँस कर कहा–'तुम्हें यह समझ किस ने दी है।' वह बोली कि 'उन (भेड़िये और गधे की ओर इशारा करके) लाशों ने सिखायी है'। सो बच्चा! यही बात आ बनी है। सिक्ख तो मुसलमान राजाओं के साथ सत्य-धर्म का व्यवहार करते हैं फिर भी मुँह की खाते हैं और जो हिन्दू 'खुशामद' करते हैं वे भी पीठ के बल गिरते हैं परन्तु तुम्हारे पिता जैसे समझदार बीच का रास्ता खोजकर चलते हैं और सुखी रहते हैं।

पुत्र–माता जी! आप का कहना बड़े विद्वानों जैसा है, और बुद्धि भी यही सलाह देती है परन्तु मुझे तो तुर्कों के साथ न सिक्खों वाले हठ और न खुशामदियों वाली खुशामद का समय आया है।

माँ–बच्चा! ये जो केश रख लिए हैं, यह बड़ी दुखदायी बात है ना। तुमने सुना नहीं कि एक बार एक नये बोये खेत में कई पक्षी चुग चुग कर खा रहे थे, किसान ने वे सभी पकड़ लिये। जब छुरी चला कर सब को मारने लगा तो एक पक्षी ने कहा कि मैं न तो चिड़िया हूँ, न तोता, न मैं खेतों के बीज चुगने वाला पक्षी, मैं तो गरीब सारस हूँ, मेरा भोजन जल में होता है, मैं तो इन पक्षियों के साथ ऐसे ही खेल रहा था। किसान ने कहा 'तुम सच कहते हो परन्तु इनकी संगति में आने के कारण मैं तुम्हें भी चोर ही समझता हूँ।' इसलिए बच्चे! मुसलमान शासक तो उस किसान की तरह हैं जो किसी की नहीं मानते। तू ही बता, बलिहार जायें अमृतसर पर, भाई मनी सिंह जी ने मुसलमानों का क्या छीन लिया था? ऐसे समदृष्टा कहाँ मिलते हैं, जो आए गए हिन्दू मुसलमान सब को एक दृष्टि से देखते थे, फिर मुसलमानों ने किस बेदर्दी से कष्ट पहुँचाये? इसीलिए बच्चा! मैं डरती हूँ कि तुम्हारे साथ पता नहीं क्या बीते? घर में जब तुम सब धर्म कर्म सिक्खों की तरह करते थे, कौन तुम्हें रोकता था? बिना किसी को आभास हुए दबा ढका सब कुछ हो रहा था और यह सिलसिला ऐसे ही चलता जा रहा था।

पुत्र–माँ जी! आप की शिक्षा बहुत उत्तम है, परन्तु–

कबीर लागी प्रीति सुजान सिउ बरजै लोगु अजानु॥
ता सिउ टूटी क्यों बनैं जाकै जीअ परान॥१२७॥

नाचन लागी घूँघट कैसा? माता जी! (गहरी साँस भरकर) मेरे हृदय में गुरु गोबिन्द सिंह जी कलगियों वाले की प्रीत घर कर गई है, रोम-रोम में प्रेम समा गया है और हर ओर मुझे उनका ही शब्द सुनायी देता है। वह प्यारा, सुन्दर तेजस्वी चेहरा प्रत्येक पत्ते,

प्रत्येक फूल, प्रत्येक रंग में से झलकता दिखाई देता है और मुझे अपनी ओर खींचता है। मेरा अपना आप मेरे वश में नहीं, मैं सिक्ख होने के नाते सांसारिक दुखों को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, आपके संताप और पिता जी की मुश्किल को भी समझता हूँ। पर हाय क्या करूँ? प्यारे का प्यार भँवर में फँसे प्राणी की तरह मुझे अपनी कलाई में से निकलने नहीं देता। आपने गुरु गोबिन्द सिंह जी का नाम सुना है मुझे अंग संग दिखाई देते हैं। माँ जी :

"कमल नैन अंजन सिआम चंद बदन चित चार॥
मूसन मगन मरंम सिउ खंड खंड करि हार[१]॥१०॥"

माँ (आह भरकर)–बच्चा सत्य है, जिन्होंने प्रेम प्याले पिए वे घर के काम काज से मुक्त हो गईं, परन्तु फिर भी ऐसा काम करना चाहिए कि साँप भी मर जाये और लाठी भी बच जाये।

पुत्र–माँ जी! बताइए, ज़रूर ऐसी बात बताइए जिससे जब तक मेरे शरीर में श्वास हैं केशों सहित सिक्खी निभा जाऊँ और आप भी कष्ट न झेलें।

माँ–बच्चा, केश त्याग दे, सिक्खों की संगति छोड़ दे, शक्ल (रूप) पिता वाली रख, दिल से तुझे जो अच्छा लगे वही कर और घर पर बैठा रह।

पुत्र–माँ जी! आपने मेरा कलेजा बींध दिया है। मैं अंदर से और तथा बाहर से कुछ और होऊँ? केश! प्यारे केश! प्राणों से प्यारे केश! त्याग दूँ? गुरु का बख्शा ताज पृथ्वी पर पटक दूँ? प्यारे की

---

१. राम लाल का भाव था : (कलगी वाले का) मुखड़ा चाँद (जैसा) नयन कमल पुष्पों (जैसे हैं) जो काजल (से) स्याम (रंग के) ऐसी सुन्दर दृष्टि से देख रहे हैं (कि) मन को मोहित कर रहे हैं, (उस प्यारे के) भेद में मैं मग्न हो रहा हूँ। ऐसी मग्नता (तल्लीनता) है कि कोई टुकड़े-टुकड़े भी कर दे तो भी वह हारेगा (मुझे शरीर कटने का पता भी नहीं लगेगा)। अथवा–(अपना आप) टुकड़े टुकड़े कर के (प्रेम की बाजी उसके सन्मुख हार दी है। भाव अपना आप न्योछावर कर दिया है)

निशानी; प्यारे की प्रेम-भरी याद फेंक दूँ? हाय! मृत्यु आ जाये पर यह न हो। वह प्यारा मेरे प्राणों के भी प्राण, मेरी आत्मा की भी आत्मा, गुरु गोबिन्द सिंह, मैं उनके आदेश को न मानूँ? माँ जी! मृत्यु आ जाये पर यह दिन न आये (ठंडी साँस और आँखें तर-बतर)।

माँ-बच्चा! मैं पत्थर दिल तुम्हारे कोमल हृदय की सूक्ष्म बातें कैसे समझूँ? परन्तु धर्म तो हृदय में है दिखावे से क्या बनता है?

पुत्र-माँ धर्म उस वस्तु का नाम है जो परमेश्वर अपने प्रिय जनों के माध्यम से संसार को बताता है। गुरु गोबिन्द सिंह जी के पवित्र मुखारबिन्द से जो निकला वही मेरा धर्म है।

माँ-बच्चा! क्या केशहीन सभी नरक में जायेंगे?

पुत्र-माँ जी, यह तो पता नहीं, परन्तु मेरे सतगुरु का आदेश यही है। मेरे प्यारे सतगुरु स्वयं केशधारी थे मैं कैसे उनके पदचिह्नों पर न चलूँ? 'तूँ साहिब हउ सांगी तेरा'। केश तन की शोभा हैं और मन की आत्मशक्तियों तथा दिमागी ताकतों के रखवाले मेरे प्यारे की भेंट हैं, मेरे गुरु के परिवार की पहचान हैं। माता जी! सच्चा धार्मिक होना तो बहुत दूर की बात है, अभी तो मैं सतगुरु का अनुचर बनने का यत्न कर रहा हूँ, पर आह! अनुचर बनने का भी ऐसा सुख है जो संसार के समग्र सुखों से भी बड़ा है; सोचो माँ जी! अगर सम्पूर्ण धर्म हमें मिल जाये तो फिर कितना आनन्द हो जाये?

माँ-तो बच्चा! अभी तू सिक्ख भी नहीं?

पुत्र-माँ जी! सिक्ख, मैं तो सिक्खों के जूते उठाने वाला होने के लायक भी नहीं। माँ जी सिक्खी बहुत ऊँची पदवी है। सिक्ख के दर्शन को तो तीनों लोकों के शिरोमणि तरसते हैं।

माँ–तो फिर हुआ क्या?

पुत्र–'**प्रीति प्रेम तनु खचि रहिआ बीचु न राई होत॥**

चरन कमल मनु बेधिओ बूझनु सुरति संजोग'[१]॥२॥

माँ–बच्चा! क्या कहूँ? क्या करूँ? तथा क्या न करूँ? तुम तो बातें कुछ बावलों जैसी कर रहे हो।

पुत्र–'**मूसन मरमु न जानई मरत हिरत संसार॥**

प्रेम पिरंम न बेधिओ उरझिओ मिथ बिउहार'[२]॥६॥

माँ–सच है जीने योग्य बेटे! तुम्हारे भेदों को मैं क्या जानूँ।

(आह भरकर)–बच्चा! हैं.....तुम्हारा सुन्दर शरीर, तुम्हारा प्यारा चेहरा, ज़ालिम मुगल शासकों के हाथों चढ़ जायेगा, (रोकर) मेरे लाल! वे पता नहीं तुम्हारे साथ क्या करेंगे? प्यारे लाल? बुढ़िया माँ पर तरस करो, बख़्श लो! हाय ममता! लाल! तुम पुण्य दान करो, ग्रंथियों का पालन-पोषण करो, सिक्खों को रुपये दो, जो तुम्हारा मन करे धर्म के काम करो। अगर तुम धर्म के लिए जीवन यापन करोगे तो क्या गुरु साहब जी प्रसन्न नहीं होंगे?

पुत्र–क्यों नहीं, पर माँ जी!

'**संमन जउ इस प्रेम की दम किहु होती सांट॥**

रावन हुते सु रंक नहि जिनि सिर दीने काटि'[३]॥१॥

माता–हाय मेरे भाग्य! मैं पहले क्यों नहीं मर गयी, बच्चा तुम्हारे सिर की खै़र मनाते हुए, तुम्हारे भले के लिए परमात्मा के

१. तन प्रीतम के प्रेम में लीन हो रहा है, राई के दाने जितना अंतर नहीं रहा। चरणकमलों में मन रत हो गया है, संयोग की दशा वालों को (ही) इस की समझ (हो सकती) है।

२. संसार झूठे व्यवहारों में उलझ रहा है (ऐसे उलझा हुआ ही) मरता और भटकता रहता है (क्योंकि वह इस) भेद को नहीं जानता (कि प्रेम जीवन है इसलिए वह) प्यारे के प्रेम से बिंधा नहीं।

३. कथा है कि रावण ने सिर देकर शिव को प्रसन्न किया था। अगर इस प्रेम का सौदा दौलत से हो सकता तो रावण जैसे कंगाल तो नहीं थे जिनको सिर देना पड़ा। भाव यह है कि परमेश्वर प्रेम द्वारा मिलता है, धन से नहीं।

आगे की गई अरदासें पूरी होने पर चढ़ावा चढ़ाते हुए ये दिन आ गए, तुम सिर-धड़ की बाज़ी लगा बैठे हो। बच्चा! यह बाज़ी मत खेलो, जिस रास्ते पर तुम चल पड़े हो ध्रुव प्रह्लाद आदि की ओर देखो, भाई मनी सिंह जी आदि को आँखों से देखा है। हाय, तारू सिंह की माँ की दर्दनाक दशा मेरा कलेजा चीरती है : बच्चा! यह बहुत कठिन रास्ता है।

पुत्र—माँ जी! महाराज जी कहते हैं—

'सागर मेरु उद्यान बन नवखंड बसुधा भरम।।
मूसन प्रेम पिरंम कै गनउ एक करि करम[१]'।।३।।

माँ—पुत्र! तुम्हें यह पागलपन कहाँ से लग गया? मैं तुम्हें भला करने से तो नहीं रोकती। देखो : पुण्यदान, जप तप आदि थोड़े काम हैं, जिनसे खुशी होती है और यश फैलता है? मैं तो केवल इस बात से रोकती हूँ कि बाजे गाजे से सिक्ख मत बनो, अपने धर्म का शोर मत मचाओ।

पुत्र (ठंडी साँस भरकर)—माँ जी!

'जप तप संजम हरख सुख मान महत अरु गरब।।
मूसन निमखक प्रेम परि वारि वारि देउं सरब[२]'।।५।।

माँ (निराश होकर)—बच्चा! पता नहीं तुम्हें प्रेम में क्या मीठा लगा है, मैंने तो सभी को दुखी होते देखा सुना है।

---

१. समुद्र, सुमेरु पर्वत, जंगल, बन, नौ खंडों वाली सारी पृथ्वी इन सबको छान मारना प्यारे के प्रेम मार्ग में एक कदम मात्र है भाव यह है कि इतना लम्बा मार्ग प्रेम के मार्ग का एक कदम होता है।

२. जप, तप, संयम, खुशी और सुख, मान, प्रशंसा और अहंकार ये सारे पदार्थ प्यारे के प्रेम के एक पल पर न्योछावर करके फेंक दूँ, भाव यह कि सारे पदार्थ प्रेम के एक पल के तुल्य नहीं हैं।

पुत्र–

'मूसन मसकर प्रेम की रही जु अंबर छाय॥
बीधै बांधे कमल महि भवर रहे लपटाय'[१]॥४॥

माँ–शराबी को नशे के शौक की तरह यह भी शौक ही प्रतीत होता है। हमें क्यों नहीं इसकी इच्छा होती?–हाय पुत्र! तुम्हें क्या पागलपन हो गया है? माँ तुम पर न्योछावर होती है! आओ कुछ समझदारी करो।

पुत्र–माँ जी! लिखा तो ऐसे है :–

'घबु दबु जब जारीऔ बिछुरत प्रेम बिहाल॥
मूसन तब ही मूसीऔ बिसरत पुरख दइआल'[२]॥७॥

यह स्वाद ऐसे ही कहाँ से आ सकता है : जब तक अपना आप न पहचानो और कलगीधर की कृपा न हो? मैं तो ऐसा हूँ :–

'जाके प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि॥
नानक बिरही ब्रह्म के आन न कतहू जाहि'[३]॥८॥

माँ–मैं समझाती जा रही हूँ परन्तु तुम पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ रहा, हाय प्यारे पुत्र! ये ऊँची घाटियाँ और दुर्गम मार्ग मत पकड़ो, अपने अंदर बैठकर सतगुरु की आराधना कर लो। कोमल से तुम्हारे प्राण हैं, एक भारी पर्वत सिर पर गिरने का डर है, मेरे लाल! कैसे बचोगे?

---

१. प्रेम की चाँदनी (हृदय रूपी) आकाश में फैल रही है (मन रूपी) भँवरा (प्रीतम रूपी) कमल में बिंधने और बँधने के बाद भी लिपटे रहते हैं। भाव प्रेम का स्वाद ऐसा है कि खेद की परवाह नहीं रहती। अंधकार छाने पर चाँद (विल्सन कोश) की चाँदनी जब खिलती है तो कमल पुष्प मुंद जाते हैं तब भँवरे पुष्प में कैद होकर बीच में ही बिंध जाते हैं।

२. हे मूसन तब बरबाद हो जाते हैं जब दयाल (परमेश्वर) भूल जाये। (हाँ) जब घर, धन–दौलत परमेश्वर से दूर करे तो इनको जला देना चाहिए क्योंकि घर-बार का नुकसान होने पर बेहाल नहीं हो जाते, बेहाल तो प्रेम के बिछुड़ने से होते हैं।

३. जिनको प्रेम का स्वाद चखने की आदत पड़ चुकी है वे प्रीतम (वाहिगुरु) के चरणों का हर समय मन में स्मरण करते हैं। परमेश्वर के प्रेमी और किसी ओर कभी मुँह नहीं करते।

पुत्र—माँ जी! है तो इसी तरह।

'लख घाटीं ऊचौ घनौ चंचल चीत बिहाल'॥

परन्तु सतगुरु की कृपा हो जाये तो :—

नीच कीच निम्रित घनी करनी कमल जमाल'[१]॥९॥

बहन—भाई साहब! माँ ने इतना समझाया परन्तु आप ने एक नहीं मानी; क्या कारण है? जैसे चिकने घड़े पर पानी पड़ता है सब बह गया, आप तो बहुत शांतचित्त हुआ करते थे!

भाई—बहन जी! मेरे वश की बात नहीं :—

'मगन भइओ प्रिय प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग'[२]॥

—कांड ३—

अब तो माँ ने विवश होकर पुत्र को अपने गले से लगाया और बहुत प्रेम भाव से अपने साथ चिपटाते हुए सावन की बारिश की तरह ऐसा रोयी कि लड़ी बंध गई। 'प्यारे पुत्र! बूढ़ी माँ पर तरस करो। बच्चा! तरस करो।'

इस बार सिंह साहब भी न रुक सके, नेत्रों में जल भर आया और बोले:—

माँ जी! आपकी ख़ातिर मैं इतना कर सकता हूँ कि इस घर में ऊपर की मंज़िल वाला कमरा मुझे दे दें, मैं जीवन के बाकी दिन वहाँ गुज़ार लूँगा। बाहर निकलना, किसी से भी मिलना-जुलना सब त्याग दूँगा। न किसी को पता लगेगा और न ही आप को तंगी होगी,

---

१. लाखों पर्वतों से भी ऊँचा और कठिन (प्रेम का) मार्ग है और चित्त चंचल (होने के कारण) बेहाल है, भाव पहुँचने योग्य नहीं परन्तु जैसे कीचड़ नीच है (परन्तु उसमें कमल पैदा होता है वैसे ही जहाँ) अत्यधिक नम्रता (हो वहाँ) कर्म (रूपी) कमल पुष्प की सुंदरता उपजती है।

२. भाव प्यारे के प्रेम में मस्त हो गया हूँ, और अब मुझे कोई सुध-बुध नहीं रही।

परन्तु मैं यह नहीं कर सकता कि थोड़े दिनों के जीवन के लिए सदैव अंग संग (साथ-साथ) रहने वाले धर्म का त्याग कर दूँ।

माँ–बच्चा! अगर इतना भी मान जाओ तो लाख-लाख शुक्र है, परन्तु तुम्हारा मन नहीं अकुलायेगा?

पुत्र–नहीं माँ जी! मुझे एकांत सुखदायी है। मेरे सतगुरु हमेशा मेरे अंग संग हैं।

इस फैसले से सब को तसल्ली (निश्चिंतता) हो गई। इतने में दीवान साहब, पंडित साहब और बड़ा बेटा आ गए, आते ही दीवान साहब बोले :–

'दुष्ट राम लाल! निकल जाओ मेरी हवेली से बाहर और प्राण रहते कभी मेरे सामने मत आना।'

पंडित–राम लाल! तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया? मलेच्छ! राज घराने में होकर क्या किया? अब भी समझ!

माँ–पंडित जी, लहू से लहू धोने पर (बराबर का बदला लेने पर) सफलता नहीं मिलती, कुछ नर्मी और प्यार से काम लेना अच्छा होता है। राम लाल घर में चुपचाप छुप कर रहना मान रहा है, यह प्रबन्ध मैं कर लूँगी कि वह घर से बाहर न निकले। घर से निकाल कर तो आप ही मौत के मुँह में धकेल देना होगा, कुछ विचार कर लीजिए।

पंडित–माई! सच है, अब छुपाने का समय निकल गया। नवाब को पता चल गया है, अब दीवान साहब वहीं से होकर आए हैं। नवाब साहब कहते हैं–सिक्ख न रहे, अगर न माने तो हमारे हवाले कर दो। बहुत मुश्किल से यह बात मनवायी है कि अगर हमारे कहने पर नहीं माना तो घर से निकाल देंगे।

माँ–हाय मैं मर गयी! पंडित जी! आप ही कुछ दया करते। मेरा लाल! हाय हाय, मेरा बाल, दर ब दर की ठोकरें खायेगा हाय भगवान! मैं क्या करूँ?

दीवान–बावली हो गई है! सयाने कहते हैं कि अगर अँगुल साँप द्वारा डस ली जाये तो उसे काट दो, जिससे बाकी का शरीर बच जाये। सारे परिवार को, बाप-दादे की इज़्ज़त को और इस माल असबाब (दौलत) को बचाने के लिए राम लाल को गंदी अँगुल जानकर काट देने में ही भलाई है।

माँ–हाय राम! पवित्रात्मा पुत्र गंदी अँगुल!! परलोक में सहायक होने वाला दुलारा ज़हर के समान!! सारे परिवार का चाँद! हैं, मेरा लाडला बालक!

दीवान–तुम साथ ही बरबाद हो गयी, सिर मुंडवा कर इसके साथ ही निकाल दूँगा।

पुत्र (माँ के पैर पकड़कर)–प्यारी माँ! मेरे पीछे अपनी इज़्ज़त मत गँवा, मेरा भाग्य मेरे साथ है, तू फ़िक्र मत कर, दो पुत्र तुम्हारे घर में और हैं; उनकी ओर मन लगा मुझे समझ कि मर गया है, जिनके पुत्र मर जाते हैं, वे माताएँ भी सब्र करती ही हैं ना!

माँ–बच्चा! जीयें वे भी, परन्तु तुम्हारे बिना दिल कैसे बहलाऊँ? बच्चा! मैं कैसे ज़िन्दा रहूँगी? तुम मेरे प्राणों के टुकड़े, मेरे लाल, मेरे लाडलें दुलारे!

बड़ा पुत्र–माँ! होश में आ, सच में औरत की बुद्धि चोटी के पीछे! समय देखकर बाकी परिवार का सुख माँग।

माँ–हे राम लाल! मुझे तीन पुत्रों के होते हुए निपूती (संतानरहित) कर चला है। मुझे सदा के लिए चिता पर डाल चला है! न मरूँगी न जिऊँगी, बच्चा! दिन रात विलाप करूँगी।

दीवान–बा मारी हुई, अक्ल, होश कर, कहीं इसके साथ ही सूली न चढ़ जाना तू भी!

सिंह जी की बहनें बिह्वल हुई ज़ारो ज़ार रो रही थीं और भाई के हाथ पकड़ पकड़कर कह रही थीं : हे भाई! हम गायों पर

दया करो; भाई! गायों को घास डालो (अर्थात हम गायों के समान सीधी सादी बहनों को बिछोड़ा देकर दुखों में मत डालो), लाला जी का कहा मान जाओ भाई। सदा के लिए घाव मत दो। बाकी सारा परिवार रो-रोकर निढाल हो रहा था ; नौकरानियाँ और परिचारिकाएँ जो सब सिंह जी की दया की पात्र थीं रो रही थीं। दीवान साहब लाल पीले हो रहे थे। पंडित जी ऊपर से कोमल, आँखें अश्रुपूरित और अंदर से चिकने घड़े हो रहे थे। बड़ा भाई आश्चर्य और क्रोध में भरा हुआ घूर रहा था।

माँ–बच्चा! उस कलगियों वाले गुरु के चरणों की ख़ैरात मेरा वचन मान जा, तुम्हें उसी की दुहाई है।

कलगियों वाले की दुहाई सुनते ही सिंह जी को चक्कर आ गया। हाय! कैसी कोमल दशा है, अगर गुरु की दुहाई मोड़ता है तो बेमुख, अगर मानता है तो सिक्खी हार कर बेमुख, करे तो क्या करे? माँ के अत्यधिक प्यार, बहनों के अतिस्नेह आदि ने मस्तिष्क को चकरा दिया और मूर्छा सी हो गयी।

ऐसी कष्ट भरी दशा में हमारे बुज़ुर्गों ने खालसा धर्म ग्रहण किया था जो आजकल माया की झलक और विषय-वासनाओं के मोह सम्मुख मुफ्त दिया जा रहा है; गुरु रक्षा करे।

सेविकाएँ दौड़ीं, गुलाब केवड़े के छींटे मार कर होश में लाया गया। माँ, ममता की मारी माँ, पुत्र का हाथ हाथों में लेकर पलोसते हुए बोली, मेरे लाल! होश में आओ, मैंने गुरु की दुहाई छोड़ी; तुम हिम्मत न छोड़ो। जब राम लाल उठा, दीवान ने बाँह पकड़कर कहा! जाओ निकलो; ढील न करो (अर्थात देर न लगाओ)। राम लाल ने कदम उठाया तो उसकी पत्नी (सिक्खनी, सरदारनी) और पुत्र भी पीछे। दीवान ने पुत्रवधू की बाँह पकड़कर कहा, तुम्हें नहीं जाना। परन्तु बाजू छुड़वाकर पतिव्रता पति के पीछे। तब माँ ने कहा: बच्चा! ज़रा ठहर जाओ। बाजू से पकड़कर पुत्र को

पास बिठा लिया और रो-रोकर बोली : काका! मेरे मर जाने के बाद जाते, तुम्हारा हाथ लगता तो मेरा परलोक भी सँवर जाता पर तुम तो अपनी बहू को भी साथ ले चले हो। मेरे पौत्र और पुत्रवधू को तो छोड़ जाओ।

पुत्र—माँ जी ये सब आपकी सम्पत्ति (दौलत) हैं, इनको रखो, मैं नहीं ले जाता।

सिक्खनी (सास के आगे हाथ जोड़कर)—माँ जी! बख्श दें, मुझे आज्ञा दें। जहाँ ये जायेंगे वहीं मैं जाऊँगी। मैं इनसे अलग नहीं रह सकती।

माँ—पुत्री! मेरा कौन?

पुत्रवधू—तो माँ जी स्वामी बिना मेरा कौन? आप बड़े सिर माथे परन्तु स्वामी के चरणों की दासी होने के कारण उनकी सेवा से कैसे मुँह फिरा लूँ? घर के सुख भोगूँ और पति के दुखों में हिस्सा न बटाऊँ? आधा अंग सारे से कैसे बिछुड़े? लोक-परलोक, दुख सुख, ये मेरे हर स्थान, हर हाल (दशा) में आश्रय (सहारा) हैं, मेरा अपना आप हैं; मैं अपने आश्रम से अपने आप से कैसे बिछुड़ जाऊँ?

दीवान—भई, सिक्खों की संगति भी बुरी, एक छुरी है। यह लड़की भी ज्ञान झाड़ने लगी है। अच्छा प्रारब्ध! इसको भी निकाल दो। लड़के को रख लो।

बालक—न बाबा। मैं नहीं रहता, जहाँ मेरे बापू जी और माँ जी रहेंगे, वहीं मैं भी रहूँगा।

दीवान—क्यों बच्चू?

बालक—इनके चले जाने पर मैं रोटी कहाँ से खाऊँगा?

पंडित—मूर्ख! दीवान साहब के घर रोटी नहीं है?

बालक—परन्तु यहाँ सभी हुक्का पीते हैं, मैं रोटी कैसे खाऊँगा? मुझे शबद कौन सुनायेगा? मुझे कलगियों वाले के प्यार की बातें कौन समझायेगा?

दीवान (माथे पर हाथ मार कर)–एक को क्या रो रही है, सारा परिवार ही बिगड़ गया है।

दीवान की पत्नी–(पौत्र को गोद में ले प्यार देकर)–मेरे आँखों के तारे। रोटी मैं पकाया करूँगी, अलग चौका तैयार करूँगी, तू तो मेरे पास रह न; लाल!

बालक–पर फिर मुझे भी कहोगे कि केश न रख। मैंने तो केश रखने हैं, फिर बापू जी से कौन छुड़ा सकता है, ये कलगियों वाले के प्यारे हैं। माँ जी को क़ौन छोड़े, नित्य गुरु नानक जी के प्रेम की कथा करती हैं।

दीवान की पत्नी–हे देवतों के अवतारो मुझ अवगुणहारी को साथ ले चलो, हे परमेश्वर द्वारा सँवारे गए बच्चो! दया करो, मुझे भी साथ ले चलो।

दीवान (पत्नी का हाथ झंझोड़कर और दूर पटकते हुए)–चल ससुरी! (पुत्र और पुत्रवधू की ओर) निकल जाओ!

दीवान की पत्नी (पास पड़ी कटार उठाकर)–हे बच्चे! मुझे मार कर जाना (दौड़ कर सिंह जी को दरवाजे में जा पकड़ा) बच्चा! मेरा काम पूरा कर जाओ (कटार उसके हाथ में पकड़ाने की कोशिश करे) मुझे मार जाओ, मैं कैसे ज़िंदा रहूँगी? हाय लोगो, मेरा पूरा वंश लुट गया। अरे कोई बचाओ। अरे कोई डूबती नौका को किनारे लगाओ। ऐसे विह्वल होकर उसने कटार अपने पेट में मार ली, रक्त बहने लगा और चक्कर खाकर गिर पड़ी। बड़े भाई ने सिंह, सिंहनी और भुझंगी (पत्नी और बच्चे) को बाहर निकाल कर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया।

-कांड ४-

माँ बाप के राम लाल और खालसा जी के बिजय सिंह घर से निकलकर अपनी पत्नी और बेटे सहित लाहौर शहर के उजाड़ बाज़ारों में से होते हुए एक ऐसे आदमी के घर पहुँचे जो सिंह तो नहीं था परन्तु जिसके जीवन का सारा व्यवहार सिक्खों वाला था, केवल केशधारी नहीं था। इस पुरुष ने अपना धर्म यह बनाया हुआ था कि समय-कुसमय सिक्खों को घर में छिपा कर आश्रय दे। चाहे इसका मन तो बहुत चाहता था कि केशधारी सिंह बन जाये, परन्तु परोपकार के लिए तकलीफ बर्दाश्त करके भी यह विचार कर कि चाहे एक और जन्म भी धारण करना पड़े परन्तु सिक्खों की सहायता अवश्य करनी है, इसने अपने आप को सहजधारी की शक्ल में ही रखा हुआ था। उस समय ऐसे कई और परोपकारी भी थे जो अपने नियमों के कारण तो सिक्ख थे, परन्तु शक्ल सूरत सिक्खों वाली नहीं रखते थे; बल्कि बाहरी व्यवहार भी ऐसा रखते थे कि जिससे पक्के हिन्दू प्रतीत हों, सिक्खों पर विपत्ति आने पर ये लोग बहुत मदद करते थे[१]। पंथ के समारोहों में गलतियों की सजाएँ भी माफ करवाते थे।

बिजय सिंह जी जब इस घर में पहुँचे तब लाला लीला राम ने - जो घर का मालिक था-इनकी आवभगत की और अपनी हवेली के उस स्थान में ठहराया जहाँ कोई नहीं पहुँच सकता था और ढूँढने पर भी पता नहीं लग सकता था। स्नान आदि करके सभी ने श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का पाठ किया और फिर प्रशाद खाकर तृप्त हुए। रात के समय पंथ की तंगियों का वर्णन चल पड़ा कि अमृतसर में से सिक्खों को निकाल दिए जाने का आदेश जारी हो

---

१. दीवान कौड़ा मल्ल भी इन सिक्खों में से ही था। सर जॉन मैलकम अपनी पुस्तक में ऐसे सिक्ख को 'खुलासा सिक्ख' लिखते हैं। ये लोग सिक्खों में सहजधारी सिक्ख कहलाते थे। ये निश्चय, भरोसे और कर्म से पक्के सिक्ख होते थे।

गया है, गुरदासपुर तक, जहाँ सिक्खों ने कब्जे किये थे सब छीने जा रहे हैं। गश्ती फ़ौज सारे पंजाब में घूम रही है और स्थान स्थान पर कच्चे कमरे (अस्थायी ठिकाने) बनाकर चौंकी (रात्रि जागरण) पहरे बैठ रहे हैं। खालसे के सारे जत्थे, जिन्होंने सिर निकाले थे (हिम्मत की थी) कहीं कहीं कुछ डटे हैं, परन्तु कई बियाबानों, जंगलों, पहाड़ों आदि की कंदरओं में जा छुपे थे, परन्तु बेचारे गरीब गृहस्थी क्या करें ; मारे जा रहे हैं।

गज्जण सिंह–खालसा जी! आपने आज की घटना नहीं सुनी?

मज्जा सिंह–नहीं जी, क्या हुआ?

गज्जण सिंह–श्री वाहिगुरु! सज्जन सिंह जी शहीद हो गए।

सारे सिक्ख–हैं! क्या भाई साहब हमें छोड़ गए?

गज्जण सिंह–मैं आपको उनकी आप बीती सुनाऊँ। पाँच दिनों तक भाई साहब पत्नी और पुत्रों सहित कैद रहे हैं, अन्न तक उनको नहीं दिया गया।

पाँच दिन उन्होंने भूख के कष्ट में बर्दाश्त किए, उनके बच्चे भी, हाय! भूख के दुख किस तरह झेलते रहे हैं, बिना डगमगाए बहुत धैर्य से रहे हैं। बंदीख़ाने का दरोगा प्रशंसा करता नहीं थकता।

आज सुबह सबको मंडी में लाकर पहले तो उनके दोनों पुत्रों को उनके सामने मारा फिर उनकी सिंहनी (पत्नी) को शहीद किया और आखिर में सिंह साहब को बहुत बेदर्दी से शहीद किया। हाथ पैर उनके वृक्ष के साथ कस दिए गए थे, हिलने लायक तो थे ही नहीं। हे करतार! जनता त्राहि-त्राहि कर उठी और जनसामान्य यही कह रहा था कि अब मुगलों का राज्य कुछ दिनों का मेहमान है। बहुत सारे लोग तो देख नहीं सके, भाग गए; परन्तु भाई जी किस प्रेम से पाठ कर रहे थे। आख़िरकार आवाज बंद हो गई, प्राण पखेरू उड़ने के साथ ही सिक्खी विश्वास केशों सहित निभ गया।

यह दर्दनाक समाचार सुनकर सबके हृदय काँप उठे, आँखों में अश्रु और दिलों में क्रोध भर गया, अचानक आई विपदा का क्या इलाज?

मज्जा सिंह–सिंह जी! भाई साहब पकड़े कैसे गए?

गज्जण सिंह–वह सुकड़ा (सूखा सा) प्रेत, उसने विश्वासघात किया है।

बिजय सिंह–वही! क्या वह ऐसा दुष्ट है? मुझे संदेह तो हुआ करता था कि यह कोई साफ दिल पुरुष नहीं है, परन्तु आज पूरा पता चला। हे करतार! कैसे कैसे भेड़िये गायों की सूरत में घूम रहे हैं।

दिल्लीभन्न सिंह (दिल्ली तोड़ सिंह)–खालसा जी! क्या करें, गुरु की मर्जी ही ऐसी है? किसी का दोष नहीं। महाराज को यही मंजूर है कि मेरे प्यारे शहीद हों, पाप मुग़लों के जिम्मे रहे उनका बेड़ा गर्क हो, राज्य जल्दी नष्ट हो।

मुगल दमन सिंह–जी सच है, अब बताइये कि क्या यह दशा ऐसे ही रहेगी? लाहौर में सिक्ख शहीद होते हैं और सिक्खों के बच्चे अत्यधिक दुखी किए जाते हैं। खालसा तो जंगलों में छिप रहा है। इन पीछे बचे परिवारों का क्या हाल?

बिजय सिंह–फिर अब ऐसा करना चाहिए कि कोई उपाय निकालें जिससे पंथ को इकट्ठा किया जा सके।

ठक–ठक–ठक!

हैं यह क्या हुआ? हवेली के दरवाजे खटके। झटपट लाला लीला राम साँस चढ़ाये हुए आ पहुँचे और बोले :–'खालसा जी! कूच करो, आज मारे गए ; सरकार में खबर हो गयी है, घुड़सवार बाहर आ रहे हैं।'

राघो सिंह–फिर क्या डर है, अभी युद्ध करते हैं।

लाला जी–सच है; परन्तु इस ठिकाने को बना रहने दो। कई बार खालसा के लिए काम आयेगा, नहीं तो आप लोग लाहौर में आश्रय खो बैठेंगे।

बिजय सिंह–फिर परोपकारी महाराज जी! कोई पिछवाड़े का रास्ता बतायें जिससे एकदम भाग जायें।

लाला जी एक गहरी विचार और धैर्य के साथ सीढ़ियों के विक्रयआगार (विक्रय का सामान रखने वाला कमरा) की ओर गए[१], टूटा फूटा सामान और बोरियों के लबादे जो विक्रयआगार में पड़े थे निकाले, और मिट्टी रंग वाली पत्थर की एक सिल जो विक्रयआगार की लम्बाई चौड़ाई के बराबर बिछी हुई धरती के साथ इकसार हुई पड़ी प्रतीत होती थी, मिट्टी पौंछ कर साफ की। दीवार में एक छोटा सा छेद था। उस छेद में एक छड़ डाल कर ठोका तो नीचे की सिल ऊँची उठ आई, दो शरीरों ने हाथ लगाकर सिल ऊपर उठा ली। नीचे एक लोहे की चादर बिछी हुई थी, इसमें फिर एक छोटा सा छेद था जिसमें सलाई घुमाने से नीचे की चादर में दो तख़्ते हो गए। ये दरवाज़ों की तरह नीचे खिसककर दीवार के साथ जा लगे और कुँआ जैसा प्रतीत होने लगा। बहुत फुर्ती के साथ खालसा जी को इशारा करके लाला जी ने नीचे उतारा और यह सौगन्ध दी कि कभी भी ज़िन्दा रहते इस सुरंग का नाम नहीं लेंगे। दो दीपक देकर कहा कि सीधे चलते जाना। सीधे हाथ की ओर न मुड़ना उधर किले की ओर जाने वाला रास्ता है और बाहर से बंद किया हुआ है ; परन्तु सीधे चलते जाना, कुछ रास्ता लांघकर एक पत्थर आयेगा, उसके मध्य में एक छिद्र होगा, छड़ डालकर दबाओगे तो वह दीवार में सरक जायेगा और कच्ची मिट्टी का ढेर दिखाई देगा। इसको धक्के से गिराकर बाहर निकलकर सारे साथियों को संभाल लेना। फिर उस सिल को दीवार में सरकी हुई होगी,

१. लाला जी का घर एक पुरातन हवेली थी और दरवाजे के अतिरिक्त इसमें बाहर की ओर से कोई रास्ता नहीं था। यह पठान बादशाहों के समय में बनाई गयी थी और इसमें बचने के लिए एक गुप्त रास्ता रखा हुआ था।

उसके बाहरी उभार से पकड़कर खींचना, वह चल पड़ेगी, जब दीवार के साथ मिलकर 'पटक्क' की आवाज आये तो समझना कि दरवाजा बंद हो गया है। फिर मिट्टी के साथ सिल को ढक कर, जिधर रास्ता मिले उधर निकल जाना। फ़तह बुलाकर खालसा सुरंग में लुप्त हो गया और लाला जी उन्हीं तरीकों से फिर निकल आए और रास्ते को बंद कर दिया, मानों यहाँ कुछ है ही नहीं था और मैला-कुचैला सामान ऊपर फेंककर अपने कमरे में अंदर के रास्ते से जा कर लेट गए। यह सारा काम लाला जी बहुत फुर्ती में निबटा गए थे और बाहर की फौज को, जो इस हवेली की एक-एक ईंट तोड़ने आई थी; संदेह करने का समय ही नहीं मिला कि इतने समय में अंदर क्या आश्चर्य घट गया है? पर तब भी बाहर का दरवाजा खुल चुका था और सिपाही बाहर के आँगन में आ पहुँचे थे क्योंकि लाला जी के एक नये नौकर ने, जो इस दुष्ट योजना में मुख़बरी का एक चलता पुर्जा और इसी कार्य के लिए नौकर रखवाया गया था दरवाजा खोल दिया था, परन्तु लाला जी भी एक भारी विद्वान और ज्ञाता थे। आपको समय पर ही सूचना मिल गई थी, और पहली आवाज़ से ही पहचान गए थे कि मुसलमानों की फौज आ गई है, इसीलिए तुरन्त पक्का प्रबन्ध कर लिया। अगर कभी एक पल की भी ढील कर देते तब कुछ भी न बन पाता।

अब लीला राम का नौकर, जो बाहर से सिपाहियों के साथ आया था और दो सिपाही लाला जी के शयन कक्ष का दरवाजा पीट रहे थे और ऊँची आवाज़ में कह रहे थे - 'लाला जी! दरवाजा खोलो।' इस समय लाला जी का एक सच्चा सेवक सिपाहियों को यह कहता सुनायी दे रहा था कि लाला जी का चित्त कुछ अच्छा नहीं है और इस समय ज़रा आँख लग (नींद आ जाना) गई होगी, परन्तु उनके ज़ोर देने पर इसने भी आवाज़ें लगाईं तो लाला जी ने आवाज़ दी और दरवाजा खोलकर आँखें मलते-मलते आधी धोती कमर पर और आधी सिर पर किये हुए बाहर निकले। सिपाहियों को

देखकर आश्चर्य में पूछने लगे कि क्या हुआ? एक सिपाही ने कह सुनाया कि आप के घर बहुत सारे सिक्खों के छिपने की ख़बर पाकर यह फौज (लयगार, धावा) आयी है इसलिए चलो बाहर के आँगन में कोतवाल साहब बैठे याद कर रहे हैं।

लीला–झूठ, झूठ, झूठ, मैं और मेरे घर सिक्ख हैं। पर अच्छा सच को किस बात का डर! मैं कपड़े पहन लूँ।

सिपाही–नहीं इस तरह ही आदेश है चलने का।

लीला–बहुत अच्छा। और चुपचाप उसके साथ चल पड़े। आँगन में पहुँचे और कोतवाल साहब को सलाम करके सादर जा खड़े हुए और चारों ओर दबी नज़र डालकर भाँप गए कि मेरे घर के प्रत्येक छज्जे, प्रत्येक अटारी, प्रत्येक दरवाजे के आगे पहरा लग चुका है, कोतवाल साहब भी पहचाने हुए, जो लीला राम के परम मित्र थे, परन्तु इस समय नुकसान पहुँचाने वाले समुद्र की तरह ऐसी कठोर त्योरियाँ और बल माथे पर डाले हुए थे कि मानो सारी हवेली को निगल जायेंगे।

कोतवाल–आप मेरे मित्र हो परन्तु राजसी मामले बहुत बुरे हैं, अब मैं सख़्ती करने के लिए परवश हूँ, आप तुरन्त सिक्खों को पकड़वा दो।

लीला–आप बादशाह मैं प्रजा हूँ और मेरा घर आपके सम्मुख है पत्ता-पत्ता ढूँढ लीजिए, जो स्थान, जो जगह कहेंगे दिखा दूँगा, जहाँ सिक्ख मिलें पकड़ लीजिए, अगर मेरी हवेली में से एक भी सिक्ख निकल आये तो मेरे साथ जो चाहें करें, मुझे आपत्ति नहीं होगी। मैं तो आपका सेवक हूँ, किसी बात के लिए आपत्ति नहीं कर सकता। मालूम होता है कि किसी दुष्ट ने मुझे दुख देने के लिए यह ख़बर दी है, पर अच्छा। खुदावंद करीम जिसकी रखे उसकी रहे।

कोतवाल–तलाशी की क्या ज़रूरत है? आप ही निकाल दो, इस तरह मैं कुछ रियायत कर दूँगा और दूसरी तरह निकले तो रिहाई होनी मुश्किल है, हमें सूचना बहुत पक्की मिली है।

लीला–अगर मेरे अंदर हों और मैं छिपाऊँ तो देनदार परन्तु जब हैं ही नहीं तो क्या करूँ? आप देख लीजिए, बिना देखे तसल्ली नहीं होगी।

बात क्या इस तरह बहस उपरांत तलाशी शुरू हुई, घर का पत्ता-पत्ता देखा गया, ज़नाने मरदाने (स्त्री-पुरुषों के) कमरे छाने गए, गुफाएँ, तहख़ाने, शीतलघर सभी को तलाशा गया, छिद्रों और ताकों तक को ढूँढा गया परन्तु सिक्ख की गंध तक नहीं मिली। कोतवाल साहब को पूरी तसल्ली हो गई परन्तु ऐसे अमीर घर में से खाली हाथ कौन जाये? एक दिल्ली की तरफ के कर्मचारी लीला राम जी को कहने लगे कि आपकी इज्ज़त खुदा ने बचाई है पर कुछ नज़राना सिपाहियों को इस रात के वक्त में तकलीफ करने का दे दो तुम्हें फिर कभी तकलीफ न होगी, छोटी मोटी बात रफा दफा हो जाया करेगी और अब पूरी सफायी (संदेह रहित स्थति) सरकार में हो जायेगी।

लीला ने सुनते ही एक तश्तरी मोहरों की मंगवा कर कोतवाल के आगे रख दी। कोतवाल साहब लाहौल लाहौल करने लग पड़े कि मैं और रिश्वत, फिर आप से? आप मेरे जिगरी दोस्त हैं।

लीला–रिश्वत तब होती अगर आप मुझे अपराधी पाते यह तो केवल आप के सिपाहियों के दूध पानी के लिए है। बात क्या हकीमों की तरह ना ना करते कोतवाल जी ने मोहरें सिपाहियों के जल पानी के लिए कर्मचारी की झोली में डलवायीं और अंधेरी की

तरह एक चहल पहल करते घर को वीरानी और बरबादी की हालत में छोड़कर चलते बने। सरकार को सूचित कर दिया कि लीला राम का घर साफ है और कोई संदेह वाली बात नहीं, जासूस ने झूठी सूचना दी है। अब जासूस को दण्ड मिलने के स्थान पर सरकार से थोड़ा सा पुरस्कार मिला इसलिए कि कहीं आगे से सूचना देने से न हट जाये।

-कांड ५-

अब उधर का हाल सुनो! खालसा जी को ज़मीन के नीचे-नीचे से एक बहुत पुरानी सुरंग में से निकलना पड़ा, रास्ता तंग, पुरानी हवा और दोनों ओर से बंद, चित्त घबराने लगे, परन्तु प्राण प्यारों ने जल्दी-जल्दी दूसरे छोर पर पहुँचाया और लीला के कथनानुसार काम करने से रास्ता खुल गया। सभी लोग एक सुनसान उजाड़ सी जगह पर पहुँच गए। पत्थर टिकाकर सुरंग का रास्ता तो बंद कर दिया, अब यह चिन्ता हुई कि किस तरफ प्रस्थान करें। थोड़े कदम चलकर एक स्थान पर बैठ गए और सोचने लगे। किसी को रास्ते की कुछ खबर नहीं थी और न ही यह पता था कि हम कहाँ हैं, अंत में गुरु पर विश्वास करके एक ओर चल पड़े। वहाँ से कुछ ही दूर गये होंगे कि चन्द्रमा की चाँदनी हो गयी और सामने की ओर एक कच्ची हवेली[१] दिखाई दी। इसके आगे पहरा लगा हुआ था, पहरे वाले ने आहट सुनकर आवाज़ लगायी। हवेली में से और उसके पीछे की ओर से देखते देखते बहुत सारे हथियारबंद सिपाही निकल पड़े और 'सिक्ख आ गए', 'सिक्ख आ गए' कहते

---

१. यह चौकी थी जो सिक्खों को मारने के लिए खोली गई थी कुछ घुड़सवार यहाँ उतरा करते थे। ऐसे कच्चे स्थान तब गश्ती फौज के लिए बहुत बनाये गए थे।

हुए खालसे की ओर टूट पड़े। सिक्ख बेचारे अचानक बला के मुँह में फँस गए, परन्तु हौंसला इनके पास एक ऐसी देन है जो इस बहादुर कौम को कभी हार नहीं देता, झटपट तलवारें खींचकर डट गए। अब एक घमासान छिड़ गया, दाँव-बाज़ी और हाथापाई आरम्भ हो गई। कहाँ पचास और कहाँ दो सौ, परन्तु तब भी मुकाबला करने से कभी न मुड़ने वाले सिक्खों ने करारे हाथ दिखाए। अनेक सिपाही तलवार के घाट उतार दिए। आख़िरकार सिपाही कुछ ठिठक कर एक ओर हो गए। सिक्ख लड़ते भिड़ते अपने रास्ते की ओर भी बढ़ रहे थे, इसलिए इन्होंने कदम और आगे किए, इधर सिपाहियों ने पीछे की ओर मुँह किया। इस तरह पीछा छुड़ाने के यत्न में दोनों पक्षों ने, दूसरे पक्ष को भागा समझ कर मैदान खाली छोड़कर भागने की जल्दी की, परन्तु हमारे बिजय सिंह जी साथ न दौड़ सके, क्योंकि उनकी पत्नी को पेट में चोट लग जाने के कारण चक्कर आ गया था और सिंह जी एकांत में ले जाकर उनकी सेवा कर रहे थे। राजसी वैभव में पली मृदुलता और कोमलता की पुतली शील कौर के लिए यह दिन उनके जीवन में पहला दुखों का दिन था और शांत, स्थिर समुद्र में भारी तूफान के अचानक आ जाने के समान विपदा का दिन था। पहले सफर की थकान, फिर घरवालों का दिल हिला देने वाला व्यवहार और घर से निकाला जाना, फिर रात की मुसीबत और अब दुश्मनों के चंगुल से बहुत मुश्किल से बचना ; कोई मामूली बातें नहीं थीं। एक मृदुल स्त्री के लिए इससे अधिक और क्या विपदा हो सकती है? परन्तु धर्म का आधार था जो इनके दिल को ताकत देता था। अब पति जी के यत्नों से बीबी (पत्नी) को होश आ गयी। घाव तो मामूली था परन्तु एक बंदूक के कुन्दे से धचका खा बेचारी बौखला कर गिरी पड़ी थी। होश संभलने पर दम्पत्ति ने क्या देखा कि मैदान खाली

पड़ा है, कई सिंह और मुसलमान मारे गए हैं। इस फुर्सत को देखकर बुद्धि के पुतले बिजय सिंह ने एक दो तलवारें, एक दो खंजर और एक बंदूक तथा थोड़ा गोली सिक्का वहाँ से लिया और उत्तर पश्चिम की दिशा में जल्दी से चल पड़ा। चाहे बहू अच्छी तरह चल नहीं सकती थी परन्तु प्राण बचाने की इच्छा उनके थके शरीरों में मुमिआई[१] का काम कर रही थी। सूर्योदय से पूर्व वे कोई सात कोस तक का रास्ता पार कर चुके थे। गाँव रास्ते में दिखाई दिए परन्तु सबसे परे-परे रहकर निकलते रहे। अब सूर्य आकाश में चढ़ आया था। साथ ही एक सघन जंगल राह में आ गया, उसको किला समझकर वन में आ घुसे और एक घनी छाया वाली जगह पर जाकर हरी-हरी घास पर लेट गए। लेटे ऐसे कि सारे होशोहवास भूल गए, जैसे कोई सौदागर घोड़े बेचकर अथवा कोई पिता पुत्री की विदाई करके सोता है। थकान चाहे व्याकुलता (बेचैनी) तक पहुँच चुकी थी परन्तु यह उम्मीद नहीं थी कि निद्रा इनकी थकी हुई आँखों में विश्राम करेगी हाँ शब्द के प्रेमी होने के कारण चित्त इनके वश में था, चित्त को स्थिरता के मार्ग पर डालते हुए निद्रा में ले गए और घास पर ही सो गए, जैसे इन्द्र सिंहासन पर सो जाये। इस समय ठंडक इनके शरीरों को हलके-हलके दबाने, सहलाने लगी और प्यारी प्यारी पवन पंखा करने लगी।

प्रातः काल के सोये, सायंकाल जागे। वन में एक पोखर सा ढूँढ कर स्नानादि किया और एक बेरी के बेर खाकर आदिकाल के दुश्मन पेट का काम चलाया। बिजय सिंह का संकल्प इस वन में कुछ दिन गुज़ारने का था, परन्तु वन में से कई दुश्मन मुसलमान सिपाही दूर सड़क पर जाते देखकर यह स्थान सुरक्षित नहीं समझा और अंधेरा घिरने से कुछ पहले ही कूच कर दिया। सांझ ढलने पर

---

१. पत्थर अथवा खान से निकली स्याह रंग की चिकनाई, जो विशेषरूप से निर्बलों को खिलायी जाती है। चोटों पर भी लगायी जाती है।

क्या देखते हैं कि दरिया के किनारे पहुँचे हैं। सूरज का डूबना, नदी का चढ़ना, रात का ढलना एक ऐसे भयभीत समय का कारण बन रहा था जिसमें मन सहम रहा था, देह सिकुड़ रही थी और निराशा बढ़ती चली जा रही थी। नदी पार जा सकने की आस, आशा से हाथ धो बैठी थी जैसे ज्ञानवान के कर्म अंकुरित होने की उम्मीद छोड़ बैठते हैं। परन्तु कुछ देर और उत्तर दिशा में कदम बढ़ाने पर हो चुकी निराशा फिर आशा में पलटी, एक घाट और एक नौका दिखाई पड़ी, जो पूरी तरह भरी हुई नहीं थी, पर वे नौका को ऐसे ही पानी में ठेलने लगे थे। बिजय सिंह की आवाज़ सुनकर मल्लाहों ने इंतज़ार किया और तीनों को सवार कर नदी पार ले गए। पैसे देने के लिए तो उनके पास कोई दमड़ी थी ही नहीं, मल्लाहों को एक ओर ले जाकर एक मोहर दे दी जो शील कौर की कमर में बंधी थैली में थोड़ी सी पड़ीं थीं। जब कुछ कदम चले तब क्या देखते हैं कि घाट महसूलियों ने घेर लिया और क्षणमात्र में पाँच दस सिपाही भी करीब आ गए : 'मरदूद सिक्ख, मरदूद सिक्ख' कहते मुँह बनाते हुए उनको पकड़ कर ले गए, और तलाशी लेकर मोहरें, गहने, जो उनके पास था, छीन लिया। कोई दो-एक सोने की अँगूठियाँ उनकी चोर नज़रों से बच गईं; या कृपाणें (तलवारें) किसी ने नहीं छीनी। एक ओर ले जाकर एक कोष्ठ में धकेल कर कुंडी लगा दी। उस डरावने कोष्ठ (कमरे) में काली सुनसान रात अपने भयंकर प्रभाव को लेकर आ पहुँची। सारे संसार में चुप्पी छा गयी, पाप करने वाली और अपराध फैलाने वाली सृष्टि आनन्द की नींद सोयी खुर्राटे मार रही है। ज़ालिमों और शक्तिशालियों के घर संसार की सारी खुशी इकट्ठी हो रही है; पर हाय! धर्म के, सत्य के पुतले! दुखी-दीनों के रक्षक किस तरह मुसीबतों में रातें काट रहे हैं। मुसीबत की रात कैसे व्यतीत हो? दुखी लोग तारे गिनते ही व्यतीत

कर लेते हैं, परन्तु हे गुरु गोबिन्द सिंह जी! तुम्हारे शेरों पर विपदाएँ भी ऐसी-ऐसी काली कुटियों में आती हैं कि जहाँ तारे गिनकर समय गुज़ारने वाला बहलावा भी नसीब नहीं होता। परन्तु नहीं तेरी सदा जागृत करने वाली वाणी भक्तों का आश्रय है और सहारा देने के लिए सच्ची मददगार और ज़ख्मी दिलों की मलहम है। चाहे बिजय सिंह जी कैद हो गये थे पर आधी रात का समय हुआ तो पता नहीं वाणी के पाठ ने क्या असर किया कि उस कमरे में गुरु की दर्दनाक आवाज़ ठंडी साँसों के साथ भरी हुई आने लग पड़ी। दंपत्ति ने चौंक कर आँखें खोलीं परन्तु अंधेरे में क्या दिखाई दे? इतने में पीठ घुमा कर देखने पर मालूम हुआ कि दरवाज़ा खुला हुआ है और दीपक आ रहा है। दीपक वाला कौन है? हमारा बच्चा वरियाम सिंह है। जब दंपत्ति पाठ में मग्न थे, तब यह महात्मा अपनी पतली कलाइयाँ दरवाज़ों की दरार में देकर कुंडी खोलने का यत्न कर रहा था। चाहे बाँह छिल गयी थी परन्तु उसने कुंडी खोल दरवाज़ा बिलकुल खोल दिया था। दंपत्ति को इस कृत्य की कुछ खबर नहीं थी और ना ही गुरु का शब्द इन्होंने पहले सुना था : बच्चा यह आवाज़ सुनकर और दरवाजे के बाहर वाले पहरेदारों को जो शराब में बेहोश सो रहे थे, बेख़बर पाकर उनके पीतल के शमादान के पास जा पहुँचा था और उस पर जल रहे दीये को उठा लाया था। ये सिक्खों वाली दिलेरी का लक्षण देखकर पिता ने माथा चूमा और दीपक की रोशनी से क्या देखा कि पास ही एक बालक मरा पड़ा है और पास एक घायल औरत दम तोड़ रही है, और आधा कोष्ठ लहू लुहान हो रहा है। वह गहरी साँसें लेती लाश किसी समय तो बुझते दीये की तरह टहक जाती और धन्य गुरु धन्य गुरु कह उठती, परन्तु फिर ऐसे निढाल हो जाती मानो मर गयी हो। बच्चे ने अब एक कटोरे में पानी लाकर पिता के हाथ में

दिया। उन्होंने जपुजी साहिब की पहली पौड़ी पढ़कर, कृपाण भेंट कर सतनाम कहते हुए उस कूच करने वाली, गहरी साँसें लेती लाश के मुँह में डाला। जैसे-जैसे पानी गले के नीचे उतरा होश वापिस लौटी और एक बार आँखें खोलकर ऐसे धन्यवाद वाले भाव से सिंह जी की ओर देखा कि मानों जीभ से बयान कर दिया हो। दूसरी बार पता नहीं क्या हुआ सिंहों वाला हौंसला आकर उस मरती हुई सिंहनी को मानों जीवित कर गया और बहुत धीमी परन्तु होश वाली आवाज़ में बोली :–'धन्य गुरु गोबिन्द सिंह जो अंतिम समय अपने प्यारे मुझ जैसे भूले-भटकों का अंत सँवारने के लिए भेजता है।' शीला जो कलेजे को मुट्ठी में लिए इस दर्दनाक समय को देख रही थी, पूछने लगी–माता! यह क्या हुआ?

स्त्री–बच्ची! सिंह जी और मैं दरिया पार उतरे थे, तुर्कों ने आकर घेर लिया, पति जी ने युद्ध किया पाँच तुर्क मार दिये, ये बहुत थे, इन्होंने उनको उठाकर नदी में फेंक दिया, मैंने भी दो-एक तुर्क मारे थे, मेरे पुत्र ने भी एक पर करारा वार किया था। इन निर्दयी लोगों ने मेरे गहने उतार कर पुत्र को भी मार दिया और मुझ घायल को यहाँ फेंक गए। दिन के अंतिम पहर से प्राण तड़प रहे हैं, न मरती हूँ, न जीवित हूँ - कभी बेहोश हो जाती हूँ कभी होश लौटती है, परन्तु गुरु, धन्य गुरु! गुरु अंग संग है वाहिगुरु बहुत दयालु है। मैं प्यास के कारण जल रही थी, उसने तुम्हें भेजा। बच्चो! मैं चली, वो निमन्त्रण आया, वो कूच की तुरही बजी, वो प्रकाश, सच्चा प्रकाश दिखायी देता है। बच्चो! मर जाना परन्तु धर्म न हारना, न हारना, धन्य गुरु! धन्य गुरु!! ऐसे कहती वह सिंहनी सच्चे विश्वास में चढ़ गयी, प्राणों का टिमटिमाता दीया एक बार चमक कर बुझ गया। बोलते समय ज़ोर लगने के कारण पेट के एक ओर लगे घाव में से रक्त की धार और बह चली, जिस ने पिंजरे में

से पंछी को उड़ा दिया। सिंह जी को अपनी विपदा भूल चुकी थी, इस बात की परवाह ही नहीं थी कि दरवाजा खुला पड़ा है और भाग जाने का मौका है, परन्तु एक सिंहनी का अंत सँवारने का ख्याल था। अब तो वह मर गयी थी, पर बिजय सिंह इस चिन्ता में है कि किसी प्रकार इसका दाह हो जाये, ऐसा न हो कि लाश की बेकद्री हो। इस कमरे के अंदर पड़े हुए कुछ ईंधन, कोष्ठ के साथ पड़ी तीन चार चारपाइयाँ तथा सूखे हुए घास और तिनके वगैरा इकट्ठे करके लाशों के चारों ओर रखकर दीये के साथ आग लगा दी और तीनों प्राणी धीमे से फतेह बुलाकर दबे पाँवों चलते, मक्खन में से बाल की तरह, फिसल गए। पहरे के सिपाही तो मस्ती में पड़े थे, प्रातः काल जब आँख खुली तो क्या देखते हैं कि सारा कोष्ठ जल रहा है और दूर की आँच ने इनकी चारपाइयों को तपाना शुरू कर दिया है। घबरा कर उठे। सारे दूर खड़े होकर टुकुर-टुकुर देखने और सिक्खों को गालियाँ निकालने लग पड़े। आग बुझाने का यत्न किसी ने नहीं किया और करते भी क्या? सरकारी सामान था, जल गया तो जल गया। आज की लूट कुछ कम नहीं थी जो अपनी जेबें भरकर फिर इतनी थी कि अपने जमादार को रिश्वत देकर खुश कर ले। इतने में समीप की गढ़ी के कुछ सिपाही आ गए और सभी लोग सिक्ख के काम को देख-देख अचंभित हो रहे थे और कहते थे वाह सिक्खो वाह! तुम्हारी मर्दानगी को शाबाश है।

-कांड ६-

जब बिजय सिंह घर से निकला था, तब उसकी माँ छुरा लगने से गिर पड़ी थी। घाव लगा तो पेट में था परन्तु वह गहरा नहीं था। चूहड़ मल्ल पत्नी पर क्रोधित तो बहुत था परन्तु उसकी बुद्धि के कारण वह एक प्रकार से उसकी मर्जी से चलता था, वैसे

चाहे कई बार गर्जना भी करता रहता था और उसपर क्रोधित भी हो लेता था परन्तु यह स्त्री ऐसी समझदार थी कि राजसी मामलों में भी पति को कई बार शिक्षा देती रहती थी और उसके सम्मानित होने का कारण बनती, इसलिए घर में ज़रूरतमंद समझदार स्त्री समझी जाती थी। इसके घायल होने पर बहुत हकीम बुलाए गये, महीने भर में घाव भरकर ठीक हो गए, परन्तु प्यारे पुत्र का बिछोह माँ को सदा के लिए ग़म दे गया, मानों इसके दिल में सदा जलने वाली चिता जला गया। माता घर के काम–काज करती, परन्तु पुत्र को याद करके गहरी साँसे भरती रहती। उसके पाठ करने का वैराग्यमयी स्वर उसके कानों में हर समय गूँजता प्रतीत होता। पड़ोस में एक बालक जपुजी का पाठ बिलकुल बिजय सिंह की तरह करता था, उसकी आवाज ऐसी प्यारी लगी कि इसने चोरी छिपे लिखित श्री गुरु ग्रंथ साहिब लेखक को बहुत सा पैसा भेंट कर अपने घर में एक गुप्त स्थान पर स्थापित किया और उस बालक का पालन पोषण अपने ज़िम्मे लेकर उससे पाठ सुनने का नियम बना लिया। इस प्रकार रोज़ पाठ सुनते रहने के कारण इसके मन में सांसारिक बुद्धि से हटकर धार्मिक चक्र चला, और बिजय सिंह पहले से भी अधिक प्यारा लगने लगा, और उसके द्वारा केश धारण करने, जिनको पहले इसने मूर्खता समझा था, अब अच्छे लगने लगे। अपने मन की स्वच्छता ने रंग दिखाया। अब दिन रात यह चिन्ता रहने लगी कि कैसे पुत्र की ख़बर मिले? बहुत चिन्ता फिक्र के बाद घर का पुरोहित ही इसको योग्य पुरुष लगा। चाहे उसकी चालाकियों से परिचित थी, परन्तु इस दोष को धन के लालच द्वारा जीता जा सकता है ऐसा उसे विश्वास था, इसलिए पुरोहित जी को बुलाकर कोई बहाना बनाते हुए बहुत सा धन दिया। बाद में यह बात सुनायी कि आप मेरे पुत्र का पता लगा दें और उसको कुछ धन जो मैं दूँ पहुँचा दें और कहें कि किसी पहाड़ में बैठकर गुज़ारा कर ले, जब ये तूफान हट जायेंगे तब मैं फिर देश मँगवा लूँगी।

पंडित जी ने पहले बहुत लम्बे चौड़े व्याख्यान (भाषण) देकर उसका पता खोजने की कठिनाइयाँ बतायीं परन्तु बाद में वचन दिया कि मैं भरसक यत्न करूँगा और आशा है कि पता लगा लूँगा। गृहस्वामिनी ने लगभग दो हज़ार रुपया पंडित जी को इस सेवा के लिए पेशगी दिया। लगभग पन्द्रह दिन बाद पंडित जी ने गृहस्वामिनी को कहा कि मैंने बिजय सिंह का पता खोज लिया है। ममता से विवश हुई माँ ने कुछ जवाहर और लगभग हज़ार मुहरें पंडित जी को सुपुर्द कीं और पैरों पर सिर रख कर दुहाई देते हुए कहा–भगवान की दुहाई है ये पदार्थ मेरे पुत्र तक पहुँचा दीजिए। पंडित जी ने अच्छी तरह उसको तसल्ली दिलाई। गऊ माँ की ज़मानत दी, वेद शास्त्र की सौगन्ध खायी और ये ढेर सी दौलत लेकर घर पहुँचे। एक गहरा गड्ढ़ा खोदकर धन उसमें दबा दिया और दूसरे दिन ढूँढने चल पड़े।

देश में सिक्खों ने सिर हिलाया था, विशेषत: दोआब के जंगली इलाके में परन्तु मन्नू की ओर से भी बड़ी सख़्ती और कत्ल हो रहे थे। लाहौर में आए दिन सिक्ख मारे जाते थे।[१] घर घर में इन बातों की चर्चा थी। मन्नू को अदीनाबेग पर शक था कि वह सिक्खों को उकसाता है इसलिए उसको आदेश गया था कि तुम इनका नामोनिशान मिटा दो। बिजय सिंह की माँ इन बातों को बहुत ध्यान से सुनती रहती थी क्योंकि प्यारे पुत्र की लिप्सा हर समय उसके मन में लगी रहती थी, इसकी यह दशा देख कर नौकरानियाँ, सेविकाएँ आदि इसको तरह-तरह की खबरें ला-लाकर सुनाती थीं। वे खबरें गृहस्वामिनी दीवान को सुनाकर पक्की सूचना लेती थी कि

---

१. देखिए तारीख: ए: पंजाब, रचना सैय्यद मुहम्मद लतीफ।

ये सत्य हैं या नहीं? कुछ समाचार जो मरुस्थल में तिनके के समान हैं, यहाँ लिखते हैं :–

दासी–गृहस्वामिनी जी! आज बहुत उपद्रव हुआ।

गृहस्वामिनी–हैं! क्या हुआ?

दासी–शालामार बाग़ में सबसे निचले तख़्ते पर दो भूखे बाघ छोड़े गए, और दो सिक्ख, जो नए-नए पकड़कर लाये गए थे मुश्कें बांधकर खड़े किए गए। भूखे बाघों ने ऐसे नोच-नोचकर उनकी बोटी-बोटी उड़ायी कि देखने सुनने का फर्क है, परन्तु बेबे जी! कहते हैं कि किसी ने हाय तक नहीं कही, श्री वाहिगुरु के नाम का उच्चारण करते मृत्यु को प्राप्त कर गए।

गृहस्वामिनी–वहाँ और कोई नहीं था?

दासी–नवाब साहिब स्वयं, सारे दरबारी और अपने दीवान साहिब भी थे। सभी ऊपर के तख़्ते पर बैठकर तमाशा देख रहे थे और खिलखिलाकर हँस रहे थे।

गृहस्वामिनी (ठंडी साँस भरकर)–विनाश कालेचविपरीत बुद्धि[१] मुगलों का राज्य अब नष्ट होने पर आ गया है। नारायण! मेरे पुत्र को प्रह्लाद की तरह बचा दो। उसे गर्म हवा न लगे।

दासी–उस का राम सहायक है, आप रंचमात्र चिन्ता न करें।

गृहस्वामिनी–क्या उन सिक्खों में कोई खत्री[२] भी था?

दासी–नहीं जी, परन्तु सिक्खों में तो सभी एक जैसे लगते हैं, कोई जट्ट (जाट) कोई खत्री का भेद तो नहीं दिखाई देता, सभी लम्बे, चौड़े और सच्चे होते हैं और बहुत बहादुर! पता नहीं इनकी कोई जाति भी होती है कि नहीं?

---

१. अगर किसी के नष्ट होने का समय आ जाये तो उसकी बुद्धि पहले ही समाप्त हो जाती है।

२. पंजाबियों में एक जाति विशेष।

गृहस्वामिनी–जाति होती तो बहादुरी नहीं होती, यह सारा मैत्री का ही फल है, कभी फटी दीवारों पर भी छत टिकती है? जुड़ी दीवारों के ही महल बनते हैं।

एक दिन गृहस्वामिनी कोष्ठ पर बैठी बाल सुखा रही थी और यह गीत गा रही थी :–

'लाड़ां पालिआ लाल दुलारा छड्ड सिधाया मैनूँ।
टुकड़े टुकड़े हिरदा होइआ खोल्ह दस्सां की तैनूँ।'

इतने में कुलपत राय नाज़म की बहू की डोली आ गयी दोनों सहेलियाँ बहुत प्यार से मिलीं। नाज़म की बहू ने राम लाल के सिक्ख बन जाने की बहुत मातमपुर्सी की और दर्द बांटा, जैसे आजकल किसी का पुत्र मरने पर मातमपुर्सी की जाती है। बातें करते करते कुलपत की बहू ने माखोवाल[१] के युद्ध की भयानक कहानी ऐसे बतायी:–

नाज़मणि–बहन जी! सिक्खों बेचारों के लिए तो बहुत मुश्किल आन पड़ी है। हैं तो अच्छे परन्तु समय के बादशाह इनके दुश्मन हो रहे हैं। कल रात पति जी ने मुझे माखोवाल का हाल सुनाया, रोंगटे खड़े हो गए। यह तो तुम्हें पता ही है कि पिछले पठानी युद्ध में सिक्खों ने अमृतसर से लेकर पहाड़ों तक का इलाका हथिया लिया था पर फिर गश्ती फौज ने उनको भगाकर जंगलों में खदेड़ दिया था और शहरों के निवासी डरावनी मौतों से मरे अथवा लुक छिप कर निकल गये और जंगलों तथा पहाड़ों में जा बसे। जो गश्ती फौज की दुर्दशा सिक्खों ने छापे मार-मार कर, रातें चीर

१. माखोवाल के युद्ध का वर्णन जेम्स ब्राउन, मैलकम ग्रिफन, कनिंघम और मुहम्मद लतीफ आदि ने अपने इतिहास ग्रंथों में किया है।

चीरकर की है वह ही जानते हैं, जिन के सिर गुज़री है। बुड्ढे कोट के समीप सतलुज की नीची धरती (बेट) में सिहों (सिंघों) का मोमन खाँ के साथ भारी घमासान मचा था, जिसमें अच्छे-अच्छे मुसलमान योद्धे मारे गए आखिरकार सिंह इनका नाश करके चुपचाप हाथ में से साबुन की टिकिया की तरह फिसल गए। इसके बाद कई उपद्रव हुए। सुना है कि जालन्धर के नवाब अदीना बेग ने अपने उन संदेहों को दूर करने के लिए, जो लाहौर की सरकार को उस पर थे, सिक्खों के साथ बहुत द्रोह (छल) किया है। ऊपर से उनके साथ मीठा बना रहा है और बीच में दाव बाँचता रहा है। माखोवाल में, जो उसके करीब ही है, सिक्खों का एक भारी मेला[१] लगा हुआ था, हज़ारों लोग इकट्ठे हो रहे थे, कहीं भजन गायन और वाणियों के उच्चारण हो रहे थे, और सिक्ख बेफिक्र झुण्ड बनाकर बैठे ढाडिओं[२] से वारें[३] सुन रहे थे। कहीं वीर रस के नक्शे बंध रहे थे, कहीं बहादुरी और मैदाने-जंग की मार-काट के गीत अलापे जा रहे थे, कि अदीना बेग चुपचाप फौज लेकर आ चढ़ा। सिक्ख लोग बेख़बर थे - अचानक चारों ओर से मुसीबत में घिर गए। बहुत फुर्ती दिखायी, बहुत चालाकी से काम लिया, परन्तु फिर भी क्या बनता था? हज़ारों ही मारे गये, लाशों के ढेर लग गये, धरती रक्त से लाल हो गई और चारों ओर भयानकता छा गयी। परन्तु योद्धे सिक्ख संभलते-संभालते आखिरकार डट गये, अपने प्राकृतिक स्वभाव अनुसार इतनी मार काट देखकर भी दिल नहीं हारा। मेले में

---

१. यह मेला संवत् १८०८ के होले-महल्ले का आनन्दपुर साहिब का था और छापा अदीनाबेग ने एकदम मेले वाले दिन मारा था।

२. योद्धों की वीरता का गायन करने वाले गायक।

३. काव्य रचना का एक रूप जिसमें शूरवीरता का वर्णन होता है।

सभी योद्धे नहीं थे इसलिए सारी भीड़ में योद्धों के लड़ते ही हलचल मच गई और सिंह तितर-बितर हो गए। इधर तो अदीना बेग ने सूचना भेजी कि मुझे जीत प्राप्त हुई है और भारी कत्ल कर दिया है, अब सिक्ख उठने लायक नहीं रहे परन्तु मेरे पति जी मुझे बता रहे थे कि उसने चोरी-छिपे अपने मित्र सदीक बेग को सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिये के पास भेज दिया है कि मैं लाहौर के हुक्म से आप पर चढ़ आया था, जो होना था हो चुका आओ सुलह कर लें। सरदार जस्सा सिंह ने इस समय बहुत दूरन्देशी दिखाते हुए सुलह करना मान लिया था कि सुलह करने से खालसा आनन्दपुर के पहाड़ी इलाके में आराम से रह सकेगा और देश में मीर मन्नू की बरसती आग से बचकर परिवारों वाले सिक्ख यहाँ दिन काट लेंगे। इस तरह उनके साथ उसकी सुलह हो गयी है और सिक्ख अब फिर आनन्दपुर में सिर छुपाने के लिए जा रहे हैं। मेरे पति जी बता रहे थे कि मेरी राय में अदीना बेग बहुत चालाक है। वह सोचता है कि अगर मैंने सिक्खों को पूरी तरह समाप्त कर दिया तो लाहौर की सरकार मुझे मार देगी, क्योंकि अभी मेरा डर बना हुआ है कि यह सिक्खों का बंदोबस्त अच्छा करता है। यह सोच कर उसने सिक्खों के साथ चोरी छिपे सुलह कर ली है कि आप आराम से टिक जाओ मैं आपको तंग नहीं करूँगा। इधर सिक्खों पर छापा मारकर और शहरी आबादी को कत्ल करके लाहौर में इज्ज़त बना ली है कि मैंने सिक्ख योद्धे बहुत ख़त्म किए हैं।

दीवान की पत्नी–बहन जी! आपको यह कहाँ से पता चला है?

नाज़मणि–कल दरबार में इसी बात की चर्चा रही। रात पति जी और एक मित्र हमारे घर बातें करते रहे थे कि नवाब अदीनाबेग बहुत चालाक है, लाहौर के अधीन भी नहीं होता, बिगड़ता भी नहीं, सिक्खों के साथ लड़ भी पड़ता है और फिर सुलह भी कर लेता है।

दिखावा यह करता है कि मैं सिक्खों के फसाद दूर करता हूँ और फिर अपना गलबा रखने के लिए थोड़े बहुत फसाद सिक्खों के होने भी देता है। मैं ये सारे प्रसंग अंदर बैठी सुनती रही थी[१] परन्तु बहन जी इस बार एक बात बहुत बुरी हुई है। सिक्खों का एक सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया अदीना बेग के पास नौकर हो गया है।

दीवान की पत्नी–चुप करो बहन! हो गया होगा। कोई कारण हुआ होगा। बहुत देर तक नहीं रहेगा, सिक्खों का रक्त बहुत सघन है। इसने किसी वक्त तुरन्त अपने भाइयों के साथ जा मिलना है।

-कांड ७-

लाहौर से चलकर रावी पार करने के बाद झनां नदी आती है। जिसका पाट और वेग इतना अधिक है कि पंजाबी की कहावतों में कहा जाता है, यथा–'नहीं है अंत झनां का जहाँ नौकाएँ लाखों डूबें।' इस नदी के दोनों ओर किसी समय भारी बेले (झाड़-झंखाड़) होते थे, जिनमें भाँति-भाँति के वृक्ष और भाँति-भाँति के जीव-जन्तु रहते थे। आज कल भी यह बेला (झाड़-झंखाड़) कई स्थानों पर दिखायी देता है, परन्तु उस समय तो लगभग सारे किनारे में होता था और दूरियाँ कम होती थीं। लाहौर जाते समय उत्तर पश्चिमी दिशा में पहले ही किनारे भारी सघन झाड़-झंखाड़ (बेला) था। जहाँ वज़ीराबाद है, यह इससे कुछ मील पश्चिम उत्तर दिशा की ओर था। यह वन केवल किनारे पर ही नहीं, बल्कि कुछ मील ऊपर तक फैला हुआ था। सघन वृक्षों और काँटेदार झाड़ियों ने इसको कठिन वन बना दिया था। इसके अन्दर जाना तो मुश्किल था, परन्तु बीच में जाकर कई स्थानों पर खुले सपाट और विरले स्थान होते थे, पर फिर भी वृक्षों की छाया सभी जगह सहारा देती

१. कुछ इसी प्रकार की राय मुहम्मद लतीफ ने लिखी है।

थी। जिन दिनों के हम दुख भरे समाचार लिख रहे हैं, यही दुष्कर जंगल खालसे के लिए स्वर्ग और इन्द्रपुरी होते थे। कोई जंगल, वन, बेला ऐसा नहीं होता था कि जिसमें दस, पाँच या सौ सिक्ख सिर छुपाए दिन न काट रहे हों। जिस समय का हमने ऊपर समाचार बताया है, उसमें एक खुले स्थान पर वन के तिनके काँटों की बनी हुई एक झोंपड़ी है, जिसके चारों ओर काँटों की बाड़ देकर ओट सी बनायी हुई है, झोंपड़ी के आगे और ओट के बीच एक आँगन भी है। यह ओट वन-पशुओं से बचाव की एक अच्छी सूरत देकर रची हुई है और झोंपड़ी के चारों ओर कई बेलें लगाई हुयी हैं। थोड़ी दूरी पर एक ओर झील है जो बारिश के जल से अथवा दरिया के उछलने से भरी रहती है। इसका जल अच्छा, मीठा और स्वच्छ रहता है। एक कुटिया में एक सिंह सपरिवार प्राण बचाये दिन बिता रहा है। सूरज देवता धरती से दूर जाता हुआ अपनी अंतिम किरणें दिखा रहा है। चारों ओर लालिमा वाला प्रकाश, जो धूप की तेजी से मद्धम होकर प्रकाश के मध्य होता है, अपनी आश्चर्यजनक रौनक को वन की सादगी की तरह एक स्थिरता वाला और सादा माहौल बना रहा है। सघन वनों में दिन के समय ही सूरज किसी घूँघट निकाली दुल्हन की नज़र की तरह धूप को बाण पत्तों की दरारों में से भेजा करता है और अब तो समय ही वह हो गया है कि जिस समय बड़े-बड़े पहाड़ों पर ही धूप के पीले रंग का प्रकाश किसी के घटते प्रताप की तरह दिखाई देता है। इस झोंपड़ी के आगे बाड़ के अन्दर एक जवान सुन्दर स्त्री बैठी है, जिसकी सुन्दरता को देखकर सुन्दरता भी दंग रह जाये। इसके सुन्दर चेहरे को धर्म, सहनशीलता, पतिव्रत्य और भजन ने ऐसी आश्चर्यजनक रंगत दी है कि शरीयत मुसलमान का मन भी सिजदे में झुक जाये। पाप जिसके करीब नहीं कभी आया, छल कपट का कभी इसे ज्ञान नहीं हुआ। कबूतर जैसा

भोलापन उसके मनमोहक चेहरे को ऐसा प्रभाव दे रहा है कि कवियों की कलम इसका वर्णन करते और चित्रकार की कलम इसको अंकित करते समय गहरे चिन्तन में धँस-धँस जाती है। हाँ कोई ईश्वर भक्त ही उस धर्मावतार स्त्री की दैवी सुन्दरता को समझ सकता है कि आत्मा की निर्मलता इंसान के चेहरे में कोई आश्चर्यमयी सत्तोगुणी रौनक भर दिया करती है। इसके पास एक सुन्दर बालक बैठा है जो गमले में लगे हुए श्री (सरू) वृक्ष की तरह लम्बा, पतला और सुडौल है। इसका चेहरा सुन्दर, भला और दूरदर्शिता वाला दिखाई देता है, धर्म और पाप की घृणा का स्वभाव चेहरे से ऐसे प्रतीत हो रहा है जैसे तरबूज के अंदर की लाली बाहर के हरे छिलके के भीतर से झलकती प्रतीत होती है।

ये दोनों माँ बेटा बैठे पिलछी[१] की टोकरियाँ बना रहे थे कि संध्या को सिर पर पहुँची देखकर इन्होंने अपना काम बन्द कर दिया और हाथ मुँह धोकर एवं पालथी मारकर रहुरास[२] का पाठ करने के लिए बैठ गए परन्तु पाठ करने के स्थान पर चुपचाप बैठे रहे जिससे मालूम होता है कि किसी तीसरे की प्रतीक्षा कर रहे थे जो कुछ ही समय में पूरी हो गयी—एक सूर्य की तरह खिले और चाँद जैसे हँसमुख चेहरे वाले सज्जन पुरुष आ पहुँचे और अपनी झुग्गी की बाड़ के अंदर बने आँगन में आकर कुछ पैसे स्त्री के हाथ में रखे और कपड़े बदल, हाथ मुँह धोकर पाठ करने बैठ गए। स्त्री ने पाठ किया और दोनों प्राणी (पिता, पुत्र) प्रेमसहित उसके मधुर पाठ को सुनते रहे। जब पाठ समाप्त कर अरदास कर चुके, तब स्त्री ने नमक डालकर सादी चपातियाँ तैयार कर लीं, ना तो घी लगा चपातियों पर और न ही कोई तरकारी आदि बनी।

---

१. एक पौधा, जो नदियों के किनारे होता है और इससे टोकरियाँ बनाई जाती हैं।

२. शाम के समय किया जाने वाला पाठ।

यह परिवार हमारे बिजय सिंह जी शील कौर और भुजंगी जी का है। इस समय चाँद की मीठी चाँदनी वृक्षों को चाँदनी की रुपहली चादर पहना रही थी और पत्तों में से छन-छन कर चाँदनी नीचे भी पड़ रही थी। जंगली जानवरों के गुर्राने के शब्द कभी कभी भयंकर स्वर में गूँज पड़ते थे कि इतने में एक मानवी आवाज़ 'हाय! हाय! हाय!' की आने लगी, जिसकी चुभन दिलों को सूल की तरह बींध रही थी। बिजय सिंह का दयापूर्ण हृदय रह न सका, एक दीणी[१] जला कर आवाज की दिशा में चल पड़ा, साथ में पत्नी और पुत्र भी चल पड़े। ढूँढते-ढूँढते एक वृक्ष के नीचे एक घायल आदमी को देखा जो हाय-हाय कर रहा था, और जिसके बदन पर ऐसी खरोंचें लग रही थीं जिनकी वजह से कई स्थानों से रक्त टपक रहा था। आँखों की रंगत ऐसी बदली हुई थी कि आदमी वहशी हुआ दिखाई दे रहा था। बिजय सिंह ने बहुत सहज भाव से उसे उठाया और संभालकर अपने शीश महल[२] में लाकर लिटा दिया, पानी उसके मुँह में डाला और घाव धोकर, लाल तेल लगाकर शील कौर का वस्त्र फाड़कर पट्टी बाँधी। अब ज़रा उसको होश आ गयी और लगा आशीर्वाद देने। आशीर्वादों से तुरन्त पहचाना गया कि यह तो पिता जी का पुरोहित है। आश्चर्यचकित होकर बिजय सिंह ने उससे पूछा कि आप पुरोहित जी कैसे वन में आ फँसे? पंडित जी भूखे थे और अपने को दुखी बताते थे। कुछ खाये बिना बातचीत कर पाना मुश्किल था। यह बात समझ कर कि आप भूखे हैं और भोजन की आवश्यकता है, बीबी (पत्नी) ने, जो बना था, आगे लाकर रख दिया। तीन संतोषी जीवों का भोजन खाकर पंडित जी

१. वनों में लकड़ियों के टुकड़ों और कई तरह के तिनके आदि जलाकर उनसे दीपकों का काम लिया करते थे। पहाड़ों में दीणी चील लकड़ी की जलाते थे।

२. खालसा बोली में, शीश महल-कुल्ली (झुग्गी)।

कुछ समय गुज़ारने लायक हो गये, पूरी तरह तृप्त नहीं हुए। झुग्गी में आटा समाप्त हो चुका था, सूर्यास्त के समय बिजय सिंह और आटा लाये थे, परन्तु रास्ते में किसी भूख से व्याकुल पुरुष को दे आये थे, कि सुबह और ले आऊँगा क्योंकि रात्रि के निर्वाह योग्य घर में है ही। पता नहीं था कि घर में मेहमान आ जायेगा, जो सारा भोजन खा जाने के बाद भी संतुष्ट नहीं होगा। जब पंडित जी खाना खाकर ताकत में आये तो अपनी आपबीती सुनाने लगे कि मुझे आपकी माता जी ने धन देकर आप की खोज के लिए भेजा था कि जैसे भी हो आपको मिलकर पदार्थ पहुँचाऊँ। आपकी माता जी की मर्जी है कि किसी पहाड़ में जा रहो। आजकल माखोवाल के पहाड़ों में जाना अच्छा है। जब माहौल कुछ ठंडा हो जायेगा और यह प्रलय मीर मन्नू के गुस्से की बीत जायेगी तब आपको पास बुला लेंगी।

बिजय सिंह–पंडित जी! आपने मुझे ढूँढा कैसे?

पंडित–बहुत मुश्किल, कई जासूस छोड़े, कई लोगों को गुप्त सूचनाएँ निकालने के लिए नौकर रखा, किसी बहुत चतुर ने सिक्खी रूप धारण कर सिक्खों में से सूचना निकाली कि आप इस वन में हो। जहाँ मैं कई दिनों से आया हुआ आपको ढूँढ रहा था। आज अचानक आप टोकरियाँ बेचते हुए मिल गये। चाहे आप चंगड़ के वेश में थे, परन्तु मैंने पहचान लिया था इसलिए आपके पीछे आया था। आपको मैंने कितनी ही आवाज़ें दीं परन्तु आप नहीं बोले, आखिरकार मैं आपके पीछे वन में प्रविष्ट हुआ, जहाँ चोरों ने घेर लिया और घायल करके फेंक दिया तथा सब कुछ लूट कर ले गए और मुझे तड़पते हुए को फेंक गए।

बिजय सिंह–पंडित जी! बहुत शोक है, मेरे पीछे आपको इतना कष्ट हुआ, मैं अनजाने में आपके दुखों का कारण बना हूँ।

मिश्र—मैं अपनी ओर से शर्म में मरता जा रहा हूँ कि आपकी माँ जी की मर्जी पूरी करने की जगह मैंने नुकसान किया और आपको भी दुख दिया।

बिजय सिंह—नहीं नहीं, आप मेरी ओर से फिक्र न करें, धन ससुरे का क्या है, जिस के भाग्य का था, वह ले गया! मुझे शोक है कि मैंने आपकी आवाज़ नहीं सुनी।

मिश्र—मैं आपकी माता को क्या मुँह दिखाऊँगा? हे धरती माता तुम ही जगह दो मैं समा जाऊँ। ओ हो! चोर ससुरे मुझे ज़िंदा क्यों छोड़ गए? मार जाते तो शर्मिन्दा तो न होना पड़ता।

बिजय सिंह—पंडित जी! आप क्यों फिक्र करते हो? मेरी माँ कभी गुस्से नहीं होगी, वह आपके वचनों पर विश्वास कर लेगी, आप ऐसे-वैसे आदमी थोड़े हैं?

मिश्र—आप अगर लाज रखें तो रह जायेगी।

बिजय सिंह—कैसे? मैं सुख देने को हाज़िर हूँ!

मिश्र—दो अक्षर लिख दीजिए कि धन पहुँच गया है।

बिजय सिंह—यह तो झूठ है जो मैं लिख नहीं सकता, आपकी मेहनत और दुख उठाने का सारा समाचार जो आपने बताया है लिख दूँगा।

इस प्रकार की बातें करके पंडित जी सोये और संतोषी परिवार ने पानी की दो-दो अंजुलियाँ पीकर परमात्मा का शुक्र किया और सो गये।

सुबह उठे, पंडित जी कष्ट में तो थे ही नहीं, न कहीं चोर मिले थे, न किसी ने पीटा था, न उन्होंने बिजय सिंह को आवाज़ दी थी। चोर था तो पंडित जी का अपना मन था, ज़ख्म जो थे वे काँटेदार झाड़ियों की चुभन के थे जो अपने काँटों द्वारा उसके

कपड़ों के साथ अड़-अड़कर, मानों उसको पकड़-पकड़ कर रोकते थे कि ऐसे अपवित्र शरीर को महात्मा के आश्रम में मत ले जा। जड़ वस्तुओं की मार पंडित जी के शरीर पर उनके बुरे इरादों को रोकने के लिए चाबुक की तरह पड़ी थी, जिसको उन्होंने चोरों की मार बताकर सिंह जी को धोखा दिया था। पंडित जी चाहते थे कि कैसे जल्दी घर पहुँचे, इसलिए सुबह उठते ही यजमान पर दबाव डाला कि हमें विदा करो।

बिजय सिंह—सत्य वचन।

पंडित—परन्तु मेरे पास तो खर्च भी नहीं है, दुखी हूँ, घायल हूँ और परदेशी हूँ, क्या करूँ?

बिजय सिंह—प्यारी शील कौर! कुछ है?

शीला—स्वामी जी! रात्रि वाले पैसे हैं जो आप टोकरियों को बेचकर लाये हैं।

पंडित—हूँ! यजमान भगवान! इनसे क्या बनेगा। मेरे सामने तो बहुत लम्बा रास्ता है।

बिजय सिंह—प्रिया! कोई संभालकर रखी हुई वस्तु निकालो, परदेसियों और दुखियों की मदद करनी चाहिए?

शीला—महाराज जी! आप की दी हुई विवाह बंधन की अँगूठी है, जिससे उम्रभर मेरा अलग होने को मन नहीं करता, परन्तु जैसी आपकी आज्ञा हो।

बिजय सिंह—सत्य है, मैं भी नहीं चाहता कि आपकी ऐसी प्यारी वस्तु आपसे छीनूँ, परन्तु प्यारी! अन्त समय सब कुछ छोड़ना पड़ता है, इसलिए अगर अब छोड़ दिया जाये और करतार के नाम पर छोड़ा जाये तो क्या नकसान है?

शीला—स्वामी जी! आपकी प्रसन्नता के लिए सिर हाज़िर है और गुरु के रास्ते देना महा सुखदायी है। फिर मैं इस मिट्टी के पुत्र[१] की अँगूठी को क्यों आपकी प्रसन्नता का कारण जानकर खुशी के साथ न दूँ?

यह कहकर अँगूठी उतार दी, जो पंडित जी को दी गई। पंडित जी ने एक बार भी इंकार नहीं किया, बल्कि आशीर्वाद देकर ले ली और चल पड़े। रास्ते में नखरे कर-कर के चले, यह बहाना बनाये कि चला नहीं जाता। इसलिए बिजय सिंह जी ने कई स्थानों पर उठा उठाकर उनको जंगल के पार पहुँचाया। फिर शहर से आटा खरीद कर अपने आश्रम में पहुँचे।

अपना काम पूर्ण करके पंडित जी जिस गाँव में ठहरे हुए थे वहाँ अपने डेरे (ठिकाने) पहुँचे, अब लगे ख्यालों के घोड़े दौड़ाने कि बहुत अच्छा काम निपट गया, सारा रुपया पच गया और इज्ज़त भी बनी रही। यजमान की धर्मपत्नी को चलकर यह अँगूठी दिखाकर निश्चय करवा देंगे कि मैं राम लाल को मिल आया हूँ और धन पहुँचा दिया है। यह उनकी निशानी है। वाह वाह, खूब साँप मारा और लाठी भी बचायी। परन्तु नहीं, भूल करता हूँ, ये सिक्ख बहुत अफलातून हैं, क्या पता है मीर मन्नू का अन्यायी और कठोर राज्य इनके हाथों जल्दी खत्म हो जाये, ये लोग राजा बन जायें, फिर बिजय सिंह माँ को मिले और मेरी पोल खुल जाये? उस समय तो कहीं हड्डी बोटी भी नहीं मिलेगी। मैं वरमी[२] मार चला हूँ, साँप भी मर जाये तभी आनन्द है, इस धन की मौज तो तब ही है अगर निश्चिन्त हो जायें, अगर मन में खटका लगा रहा तब कुछ लाभ नहीं होगा। अब हे मेरे चतुर मन! कोई और उपाय सोच

---

१. भाव सोना।

२. दीमक द्वारा बनाया मिट्टी का ढेर

जिससे निश्चिन्त हो सकें (आँखें बंदकर सिर झुका लिया) आह! कैसी दूर की सूझी है। एक पंथ दो काज! इस गाँव में एक प्रतिष्ठित मुसलमान रहता है, अस्सी रुपये सिक्ख के सिर का मूल्य मिलता है। यहाँ तीन सिक्ख हैं, अस्सी गुना तीन–दो सौ चालीस, वाह वाह अच्छी दौलत हाथ लगेगी। साथ ही मेरे मन की परेशानी मिट जायेगी, हे मेरे दिल यह क्या सूझा है? पाप बुरा, एक करो तो उसको छुपाने के लिए एक और की ज़रूरत पड़ती है। उसको छुपाने के लिए फिर एक और की, ऐसे एक पाप श्रृङ्खला बन जाती है पापों की, जिसकी अंतिम कड़ी फिर बेआसरा ही रहती है। हाँ हाँ पर सिक्ख तो सिक्ख बनते ही मरना माँगते हैं। ये तो आप मौत को आवाज़ें मारते फिरते हैं, इनका मारा जाना इनको मुँह माँगी मुराद मिलना है। इस में दोष तो नहीं ये तो पुण्य ही है। मैं भी कैसा समझदार हूँ लोग एक पंथ दो काज करते हैं, मैं एक पंथ तीन काज करने लगा हूँ। एक तो दौलत और मिलेगी, एक मेरे मन का कंटक मरेगा, एक पुण्य होगा। हा हा हा खिलखिला कर हँस पड़े।

–कांड ८–

भाई बिजय सिंह जी उस वन में भजन स्मरण में समय बिता रहे थे कि पंडित जी ने उनके शांत वास में जा पत्थर फेंका, परन्तु दिल का पक्का मर्द ऐसी बातों से प्रभावित होने वाला नहीं था। पुरोहित को विदा कर आटा खरीद कर भोजन तैयार करवाया और खाया फिर सारा परिवार अपने-अपने काम में लग गया। वह यह था कि दिन भर तीनों प्राणी पिलछी के टोकरे टोकरियाँ बनाते थे। दूसरे तीसरे दिन बिजय सिंह रंघड़ों के वेश में नगर जाकर बेचता और पैसे कमाकर परिवार का गुज़ारा चलाता था। तीन चार आने की कमायी रोज़ हो जाती थी, जो उन संतोषी जीवों के लिए बहुत होती थी। कैसी आश्चर्यजनक दशा है कि सिक्ख उस समय

राजसी वैभव को छोड़कर कंगाली और कैदें, देश निकाले और भयंकर कष्टों में पड़कर भी सिक्खी धर्म का निर्वाह करते थे? उनके द्वारा स्थापित आदर्शों पर सब सिक्खों को चलना चाहिए। सिक्खी धारण करने और निबाहने में ही अपना कल्याण और पंथ की ताकत है।

पुरोहित के विदा होने के बाद तीसरे दिन सूर्य ढले सिंह जी शहर में टोकरियाँ बेचने गये, पीछे शील कौर और भुजंगी (पुत्र) अपने काम में लगे हुए छोटी-छोटी बातें कर रहे थे :-

पुत्र–माँ जी! यह ब्राह्मण मुझे अच्छा नहीं लगा।

माँ–काका जी! क्यों?

पुत्र–माँ जी! यह पता नहीं क्यों परन्तु आँखों को भाया नहीं।

माँ–बरखुरदार! कल तुम्हारे पिता जी ने कथा की थी और यह बताया था कि जाति के कारण किसी को भला बुरा मानना हमारे धर्म में अच्छा नहीं माना जाता और न ही रूप के कारण किसी को अच्छा बुरा समझना अच्छी बात है। अच्छाई और बुराई कर्मों से सम्बन्धित है, जिसके कर्म नीच वह आप भी नीच।

पुत्र–फिर माँ जी! मुसलमानों के साथ क्यों सिक्ख लड़ते हैं?

माँ–काका जी! इसलिए नहीं कि वे तुर्क हैं, अथवा वे धर्म के कारण मुसलमान हैं अथवा रंग के काले सफेद अथवा सूरत के भद्दे कि सुन्दर हैं, परन्तु इसलिए कि इस समय राज्य तुर्कों (मुगलों) का है, उनके कर्म बुरे हैं। परमात्मा ने उनको राज्य दिया है और वे राज्य अन्याय का करते हैं, धर्म और न्याय का राज्य नहीं करते। निर्दोषों को मारते और अनाथों पर अत्याचार करते हैं।

पुत्र–ठीक है, परन्तु माँ जी! फिर भी मुझे ब्राह्मण अच्छा नहीं लगा-शायद, माँ जी! उसके कर्म खोटे ही हों?

माँ–तुमने कोई खोटा कर्म करते उसको देखा है?

पुत्र–नहीं जी!

माँ–फिर क्यों उसको बुरा समझते हो, लाल जी! केवल शक करना अच्छा नहीं, पक्की खबर के बिना किसी को बुरा कहना भले लोगों का काम नहीं है।

पुत्र–माँ जी! मेरे मन में पक्की बात बैठ गयी है, किसी तरह नहीं निकलती।

माँ–(शर्मिन्दा होकर)–मेरे लाल! तुम्हारे मन में शक घुस गया है, यह मनुष्य का बहुत बड़ा दुश्मन है, हृदय को खराब कर देता है। हृदय के सिंहासन को परमेश्वर के विराजमान होने लायक नहीं रहने देता! बच्चा जी! यह आत्मिक रोग है, आओ गुरु साहिब के आगे प्रार्थना करें ताकि रोग काटा जाये।

काम छोड़कर माँ पुत्र कुटिया के अन्दर गए, और हाथ जोड़कर माँ ने बच्चे के लिए विनती की :– हे अकालपुरुष करुणामय जगदीश्वर! यह तुम्हारा छोटा बालक है, इसके हृदय में शक घुस गया है, हमें निरभिमानियों को कोई उपाय नहीं सूझता जिससे इस दुख का इलाज किया जाये, तुम्हारी शरण में आये हैं, इसलिए कृपा करके अपनी मेहर के जल द्वारा इस दास के हृदय को शक और घृणा से धो दो और निर्मल कर दो। हमारे निराश्रयों के तुम आश्रय हो, तुम्हारे बिना हमारा कोई नहीं। जैसे भयानक जंगलों में डरावने पशुओं से हमारी रक्षा करते हो, संसार के सारे पापों से इसी तरह हमारे मन की रक्षा करो, और हमारे मनों को साफ करके अपने चरणों के लायक सिंहासन बनाओ।'

इस प्रकार की प्रार्थना करने के बाद जब सिंहनी ने नेत्र खोले तब कानों में एक शोर की आवाज़ पड़ी।

'हा! मत; मारो मैं झूठा नहीं हूँ, हा! तरस करो, तरस; अब नज़दीक है, ओह हाय नज़दीक! हा नज़दीक! हाय मत मारो। मर गया, गरीब मर गया, हा राम! हा राम!! हा राम!!!

झुग्गी की एक दरार में से सिंहनी ने नज़र भर कर देखा, तब क्या नज़र पड़ा, एक पतले से मनुष्य को एक तुर्क प्यादे ने पकड़ा हुआ है, दो ने बाहें पकड़ रखी हैं और एक व्यक्ति थप्पड़ मार-मार कर कह रहा है : 'मरदूद काँटों में घसीट कर हमें खराब किया, सारा बदन हमारा छिल गया।' जिसको मार पड़ रही है वह दुहाई दे रहा है कि मुझे छोड़ो तो तुम्हें पता बताऊँ, मुझे निशान मिल गये हैं : कुछ कदमों की दूरी है। परन्तु वे एक नहीं सुन रहे थे। सिंहनी के उजले चेहरे पर बल पर बल पड़ने और बदलने लगे, जैसे स्थिर समुद्र की तलहटी पर तूफान आने से पहले लहरों की त्यौरियाँ पड़नी आरम्भ हो जाती हैं। गहरी रुचि और साँस रोककर सुनने से बहादुर स्त्री आने वाली स्थिति को समझ गयी, और पुत्र को अपनी छाती से लगाकर बोली-पुत्र! ब्राह्मण सचमुच दुष्ट है, दिल तो मेरा भी घबराता रहा है परन्तु मैं अपने आप को संभालती रही हूँ, तुम सच्चे हो, लो अब तगड़े (हिम्मत धारण करो) हो जाओ। अब बहादुरी का अवसर और पिता के उपदेशों को सफल करने का समय है। परन्तु आओ पहले अरदास करें। तुरन्त दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए-'हे कलगीधर फौजों के स्वामी गुरु! हे दीनबन्धु अकाल पुरुष! इस समय आपकी इच्छानुसार शत्रु दल सिर पर चढ़ आया है, और हाथों हाथ मुकाबला आन पड़ा है, मैं निर्बल औरत और यह नासमझ बालक है, मुकाबला उजड्डों/मूर्खों से है। तुम पतित पावन और गरीबों के मददगार हो, इस समय अपनी ताकत दो जिससे शत्रु दल का मुकाबला करें, प्राण जायें तो जायें डर नहीं, परन्तु धर्म बचा लें, मर जायें, परन्तु धर्म न हारें।"

अरदास कर चुकी तो पता लगा कि शत्रुओं ने झुग्गी ढूँढ़ ली है। पुत्र को बोली : 'काका! जल्दी से कोई शस्त्र पकड़ ले, और मजबूत हो, तुर्कों को देखकर डर मत जाना, दिल खोल कर लड़ना, अगर मैं मर भी गयी तो हौंसला न छोड़ना, प्राण दे देना पर शस्त्र न देना, सुलह न करना, हमारी मदद पर गुरु जी हैं।' शेर दिल बालक ने पहले वह बन्दूक उठायी जो हर समय भरी हुई घर में पड़ी रहती थी कि अगर कभी जरूरत पड़ जाये तो भरते हुए देर न लगे और साथ में कटार और ढाल पकड़ ली। माता ने तलवार और ढाल ले ली और दोनों आँगन में आ खड़े हुए। इस समय दुश्मन भी आ पहुँचे थे, उनको देखते ही सिंहनी ने शांति, परन्तु सबलता से पूछा, कौन हो?"

उत्तर–हम सिपाही हैं, आपको पकड़ने के लिए आये हैं, खुशी के साथ आ जाओ तो वाह वाह, नहीं तो जबरन पकड़...।

'पकड़' अभी सिपाही के मुँह में ही था कि भुजंगी की बंदूक का घोड़ा दबा और माथे के बीच निशाना लगा, फड़कती लाश नीचे गिरी। पुरोहित जी तो दूर जा छिपे और बाकी के चार सिपाही अब बहुत गुस्से में भर कर आगे बढ़े। इन सिपाहियों के पास केवल तलवारें ही थीं क्योंकि ब्राह्मण द्वारा सूचना दिये जाने पर कि वे साधु-लोग हैं, किसी को इस मुकाबले की उम्मीद नहीं थी।

अब सिपाही बाड़ फलाँगने लगा तब कौरां के शेर हाथ ने बढ़कर तलवार का ऐसा वार किया कि उसके कंधे पर लगा और औंधा होकर बाड़ पर गिरा, आगे से उचक कर कौरां की तलवार फिर चली और गर्दन को चीर गयी। बाकी के तीन सिपाही कपाट तोड़ कर अंदर घुसे और हमारी शेरनी पर हाथी की तरह दौड़ कर टूट पड़े। इतनी देर में भुजंगी ने दूसरी बार बंदूक भर ली थी। फुर्ती से अंदर रहते हुए ओट में से चला दी, तो एक और की छाती में

लगी और बंदूक फेंक कर बहादुर बच्चे ने अपनी घिरी हुई माता के एक और शत्रु की टाँग पर कटार मारी, जिसकी चोट से वह गिर पड़ा। इस पुरुष की सीखी हुई तलवार का प्रहार और पैरों की चौंकड़ी ऐसी बल वाली थी कि शील कौर के बचने की सूरत नहीं थी, परन्तु यह सिपाही जब गिरा, उस दूसरे जवान की तलवार शील कौर पर तौलवें हाथ की पड़ी, तलवार आगे करके वीरांगना ने वार तो रोका परन्तु अपनी तलवार टूट गयी, दौड़ कर अंदर गई और बंदूक उठाकर डंडे की तरह उठाकर पड़ी, परन्तु इस फुर्ती के होते हुए भी सिपाही ने भुजंगी को घायल कर दिया था। अगर कभी दूसरा वार पड़ जाता तो शेर बच्चा स्वर्ग सिधार जाता, परन्तु नहीं, क्रोधित हुई सिंहनी की बंदूक का कुंदा उसके हाथ पर ऐसा पड़ा कि तलवार गिर पड़ी और वह इस अचानक लगी चोट के सदमे से घबरा कर पीछे गर्दन घुमा कर फुर्ती से तलवार पकड़ने के यत्न में लपका ही था कि घायल बालक ने दायीं ओर से कटार और बायीं ओर से घायल सिंहनी ने बंदूक का एक भरपूर वार किया, जिससे वह धड़ाम करता धरती पर गिर पड़ा। रक्त के फव्वारे छूट पड़े। अब पाँचों दुश्मन ले लिये थे। तीन तो मर चुके थे, चौथा, जिसको गोली छाती में लगी थी, हिचकियाँ ले लेकर प्राण छोड़ रहा था और जिसकी टाँग टूटी थी, वह जीवित था, चलने लायक नहीं था, परन्तु दाँव की ताक में था कि किस तरह इनको मारूँ? आखिरकार बहाना/छल किया; रो रोकर पानी माँगने लगा। सिक्खों का हृदय हर समय सच्ची दया दिखाने को तैयार रहता है। उसको लाचार जानकर शील कौर अंदर से जल ले आयी और उसके मुँह में डालने लगी तब उसने दाँया हाथ अपनी पोशाक के अन्दर छुरी पर पहुँचाया।

शील कौर की कपाट की ओर पीठ थी परन्तु उसका पति अब पहुँच गया था, उसने घर में जो घट रहा था इसकी खबर शहर में ही सुन ली थी इसलिए जल्दी ज़ल्दी घर आया था और बाड़ पर मुर्दे पड़े देखकर जान लिया था कि अनिष्ट हो गया है। अब साँस रोककर अंदर देख रहा था कि उसे पत्नी और पुत्र दुष्ट को जल देते हुए दिखाई पड़े, और शत्रु का दाँया हाथ पोशाक के अंदर देखकर सिंह जी का तजुर्बेकार मन सारी बात समझ गया। यह काम सारा आधे मिनट का भी नहीं था, हिरण की फुर्ती जैसे छलाँग लगाकर सिंह जी ने सिपाही का निकलता हाथ इस ज़ोर से पकड़ा कि छुरी की नोक के अलावा कौरां को और रत्ती भर नहीं छुआ। उधर भुजंगी ने सिपाही के हाथ में कटार (और उसके उस हाथ को पिता के हाथ में कैदी) और माता को नोक लगने से लहू बहने का हाल देखकर अपनी कटार चलायी और उसके कंधे में गहरा घाव लगा दिया। अब सिंह जी ने सभी मुर्दे अच्छी तरह देखे और पाया कि सभी प्राणहीन हैं, अंतिम की मौत अभी नहीं थी आयी, सिंह ज़ी ने उसकी तलाशी लेकर उसकी मलहम पट्टी की। फिर जल पिला कर कहा कि अरे मित्र! हमें सारा हाल सच सच सुना दो।

इस सिपाही ने, जो जाति का मुगल और प्रसिद्ध बलवान था, ऐसे शत्रुओं को देखकर, जिनके बच्चे और स्त्रियाँ पाँच सिपाहियों पर भारी पड़े, फिर दयालु ऐसे हों कि घायल शत्रु को कत्ल करने की जगह जल दें और पट्टियाँ करें, दिल में उनका धन्यवाद माना और ऐसे हाल कह सुनाया–

एक भेदिए ने जो लाहौर का निवासी है, आज हमारे हाकिम साहब को पता दिया था कि अमुक जंगल में सिक्ख रहते हैं। उसकी तकरीर (बातचीत) ऐसी थी कि हाकिम साहब को विश्वास हो गया। हमें आदेश दिया कि इसके साथ जाओ और

उनको पकड़ लाओ। हम पाँच लोग उस भेदिए के साथ आये। दोपहर से टक्करें मार-मार कर जंगल के काँटों से घिसटकर ऐसे थके कि हमने भेदिए को झूठा समझकर उसको मारने का इरादा किया। परन्तु उसकी जीभ कुछ ऐसी चिकनी और चुपड़ी हुई है कि आदमी के दिल में ऐसे ही तरस आ जाता है। इस तरह कितनी ही देर टक्करें मार-मार कर हमने यह जगह ढूँढी। हम तो जानते थे कि मालिक इस समय गाँव गया है, एक औरत और लड़के को पकड़ लेना कोई बड़ी बात नहीं इसलिए बिना तैयारी के आए थे, परन्तु आपकी पत्नी और पुत्र ऐसे कमरकसे कर के हमें मिले कि लेने के देने पड़ गए। मरना और घायल होना तो ख़ैर सिपाहियों के लिए कोई बुरी बात नहीं, परन्तु एक स्त्री और बालक के हाथों पाँच सिपाहियों का इस तरह घायल हो जाना एक भारी कलंक और शर्म की बात है। अब मन में विश्वास हो गया कि हम कुछ दिनों के मेहमान हैं। जिन लोगों के बच्चे और औरतें ऐसे हौंसले वाले हों वे ज़रूर राज्य ले लेंगे। मैं तो कभी सिक्खों के साथ टक्कर नहीं लूँगा, और अगर जीवित बचा तो आपकी बहादुरी की हमेशा दाद दूँगा।"

सिंह जी—शाबाश आपको! वह भेदिया कहाँ है?

मुगल—वह तो आपके बहादुर पुत्र की पहली गोली सुनते ही भाग गया था। सिंह जी! आप यह तो बतायें कि इस शीरखोर[१] बच्चे को तलवार के वार और बंदूक की निशानेबाजी कब सिखायी थी?

सिंह जी—सिंहों की जन्मघुट्टी ही शस्त्र विद्या है। दिन रात यही तो हमारा व्यवहार/खेल है।

१. दूधपीता बच्चा।

फिर सिंह जी ने पत्नी और पुत्र के घाव देखे जो केवल चमड़ी में लगे थे, कोई खतरे वाला ज़ख्म नहीं था। वाह वाह गुरु गोबिन्द सिंह जी के शेर! कभी मुर्दों की ओर, उन कायरों की ओर जो बेगुनाहों पर चढ़ आये थे और औरत तथा बच्चे पर शस्त्र उठाकर झपटे थे, देखते थे, कभी प्यारी पत्नी और पुत्र की ओर देखते और दोनों को गले से लगा-लगाकर कहते थे-शाबाश! खालसे की तलवार के जौहर खूब दिखाये; और गुरु गोबिन्द सिंह जी के बख़्शे अमृत का तेज खूब रोशन किया। निश्चय हो तो ऐसा! धन्य गुरु जी हैं जो आप हाथ देकर बचाते हैं और अपने सेवक को प्रसन्नता प्रदान कर जिम्मेदारियों से मुक्त करवाते हैं।

सिंहनी और भुजंगी को वह मलहम, जो खालसों में 'जीवनबूटी' कहलाती थी, और प्रत्येक सिंह के पास थोड़ी बहुत रहती थी, लगायी गई और नाश्ता पानी करने के बाद सिंह जी ने कहा कि अब यहाँ का निवास खतरनाक है, आज तो बच गये, परन्तु कल नहीं बचेंगे। अब राजनीति यहाँ से भागना है।

पुत्र-पिता जी! चलेंगे किधर?

पिता-काका जी! किसी दल के साथ जा मिलेंगे।

पुत्र-वाह! वाह! तो पिता जी पहले ही उनमें जा रहते, मैं बंदूक चलानी तो अच्छी सीख लेता।

पिता-तुम्हारे कारण ही मैंने इस जगह को ढूँढा था कि दलों में औरतों और बच्चों का निर्वाह कठिन है। ऐसे ही कहीं पंथ की सेवा करते-करते फँस जाने के कारण पंथ को उलटी असुविधा न हो जाये।

पत्नी-क्या औरतों का पंथ में निर्वाह नहीं होता? बल्कि सेवा का काम तो हम अच्छा कर सकती हैं, अब जरूर चलो।

पति–सत्य वचन! पंथ के जत्थों में कोई–कोई शेरदिल औरतें सेवा करती हैं। मुझे तुम्हारे ऊपर इतनी उमीद नहीं थी परन्तु आज विश्वास हो गया है कि आप दुख सुख झेल लोगे। अब कूच करते हैं, दिन डूब रहा है, परन्तु उम्मीद है कि दो घड़ी रात गुज़रने तक क़रोड़ा सिंह के जत्थे में जा मिलेंगे, जिनके दल के शूरवीरों का एक टोला यहाँ से लगभग चार कोस पर उतरा हुआ है।

यह सलाह बनाकर चल पड़े, तुर्क घायल बेसुध पड़ा था, आप जंगल में चारों ओर नज़र मार कर बेफिक्र हो दक्षिण पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। शस्त्र और कुछ ज़रूरी सामान साथ में उठा लिया। घुसमुसे में वन से पार हुए। यहाँ एक विश्वसनीय आदमी से पूछा तो पता लगा कि खालसे का दल अभी चार कोस दूर है।

अब चिन्ता यह हुई कि चार कोस का रास्ता इस अँधेरे में कैसे काटा जाये? स्त्री और बच्चा, वे भी कुछ घायल और थके हुए और कभी न भोगे हुए सदमे में से गुजरे हुए थे। सिंह जी विचारों की तलैया में धीरे–धीरे उतरते उतरते चिन्ता के जल में डूब गये। यह निर्णय करना कि रात कहाँ काटी जाये तो कहीं रहा सिंह जी को यह भी भूल गया कि मैं सोचने क्या लगा था? जैसे किसी पुस्तक को पढ़ते समय नज़दीक करते–करते आँखों के साथ ही लगा दें तो बिलकुल कुछ दिखाई नहीं देता। जैसे अत्यधिक तीखा घूमता लट्टू खड़ा दिखाई देता है। जैसे धरती की अत्यधिक तीक्ष्ण गति आँखों को नहीं दिखाई देती और खड़ी महसूस होती है, कुछ देर के लिए सिंह जी की सोच इस प्रकार की सुन्न दशा में पहुँची हुई ऐसे फिर अपने आप में आई, जैसे पानी में गिरा पुरुष पहले तो नीचे को जाता है परन्तु पानी का स्वभाव फिर उसे ऊपर ले आता है, फिर नीचे जाता है और फिर ऊपर आता है, इस प्रकार की हलचल में से तैराक तो तैर कर निकल जाता है परन्तु अनजान दस

बारह गोते खाकर जल में समाधि बना लेता है, इस प्रकार सिंह जी मन की पानी जैसी तैराने वाली शक्ति के कारण फिर होश में आये। यह वह शक्ति है जो योगियों की समाधि नहीं लगने देती और ध्यान लगाने वालों का ध्यान नहीं टिकने देती परन्तु इस समय तो सिंह जी को यह शक्ति ऐसी गुणदायी हो गई जैसे शीत ऋतु की वर्षा दुनिया को पाले का दुख देती है, परन्तु खेती के लिए गुणकारी होती है।

अब सिंह जी होश में आए, चारों ओर दृष्टि के दूत दौड़ाने लगे, एक ओर एक दीवार सी वृक्षों की ओट में दिखाई दी। आप के पैर उस दिशा में परिवार सहित चले गये, जा कर क्या देखा कि कोई पुराना गिरा हुआ मकान है और एक रात गुज़ारने के लिए सिर छुपाने की जगह काफी है। एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर चारों ओर नज़र दौड़ाई, तसल्ली हो जाने पर आपने वहाँ रुकने का तय कर लिया।

जैसे सूर्य के सिर छुपाते ही रात आ पहुँचती है, वैसे सिंह जी के ओझल होते ही उनके पीछे श्री पुरोहित जी महाराज किसी वृक्ष के नीचे से ऐसे निकल आये जैसे पत्तों के ढेर में से विषैला साँप फन निकाल बाहर आये। सूखी हुई तोंद पर हाथ फिराकर कहने लगे: वाह भई उस्ताद! मैंने तो सूर्य को पिटारे में बंद कर लिया है। यह चालाक सिख कितने उपायों द्वारा प्राण बचाता है, परन्तु मैंने भी कैसा पीछा किया है। घोड़ा कितना ही सरपट दौड़े मक्खी पीछे हट नहीं सकती। अब हे पंडित जी महाराज! ऋषिराज जी! कोई उपाय ऐसा करो कि साँप लोटे में पड़ा हुआ ही मारा जाये अगर यह जीवित निकल गया तो मेरे मन को शांति नहीं होगी, धन की मौज लूटनी ऐसी किरकिरी हो जायेगी जैसे खीर खाते समय मुँह में बाल आ जाये, अथवा लड्डू खाते समय रेत आ जाये। अच्छा अब पीछे मुड़ें पक्की निशानियाँ रख लें, जिससे फिर लड़ाकू

अहदियों (मुगलों) से दुख न मिले। चल मन चलें, टाँगें पतली हैं, जल्दी कैसे पहुँचे? हौंसला कर हे मन! देख खरगोश की टाँगें पतली, बारहसिंगे की टाँगें पतली, कैसे भागते हैं? परन्तु नहीं (जाँघों पर हाथ मार कर) मैं तो अलंकार रचने भी भूल गया, मैंने अपनी टाँगों को शिकार से उपमा दी है, मैं कोई शिकार हूँ? मैं तो शिकारी हूँ अच्छा अब शिकारी बना जाये। पढ़ा तो था कि 'अहिंसा हि परमो धर्मः'[१] और मैं बन गया शिकारी। परन्तु क्या डर है, अगर शिकारी न होते तो महात्मा के बैठने के लिए मृगछाला कहाँ से आती? कस्तूरी कहाँ से बनती? यह परोपकार है। यह मन ससुरा बहुत खोटा है, कहता है तुम बुरा करने लगे हो। मन! तगड़े हो, तुम्हें कितनी राजनीति पढ़ाई, परन्तु तुम कोई-कोई आवाज़ अंदर से निकाल ही देते हो। हे मेरे यत्न उद्यम कर और इस घर के शत्रु अपने मन को दबा ले। देख, यह राजनीति और शूरवीरता के उलट चलता है। उठ तगड़ा हो, उठ हौंसले उठ! देख मेरा अपना ही मन मेरा प्रण छुड़ाता है। आहा आहा, वाह वाह, मन भी मान गया, अब मौज हो गयी, जिस घर में संगठन नहीं उसका सत्यानाश हो जाता है। अरे मेरी कोशिशो, चलो जल्दी करो, मेरी टाँगो चलो। हे मन! देख परशुराम ब्राह्मण था परन्तु कैसा शूरवीर हुआ, तुम भी ब्राह्मण हो, तगड़े हो जाओ! यह सोचते हुए अन्तःकरण में से फिर कुछ सोच उठी कि मैं क्या कर रहा हूँ। फिर उस आवाज़ को ठंडा करने के लिए आप मन को कहने लगे—मैं श्रवणपुत्र हूँ, मेरा पितामह परशुराम मुझे बचायेगा, पितृ भक्तों की भी बहुत उत्तम गति होती है, फिर आगे का क्या डर है? अब भई जल्दी करें, रात बहुत बीत गई तो कलेश होगा और दिन चढ़ते ही मुझे आशा है कि ये तीनों सिक्ख तारों की तरह लुप्त हो जायेंगे।

---

१. किसी को न मारना ही बड़ा धर्म है।

इस तरह अपने मन से बातें करते हुए आप जी का मन कभी हौंसले में और कभी सोचने में ही रहा, ऐसे मनुष्यों को डर, भय आदि समय के बीच से ले निकलता है। करोड़ हौंसला करते परन्तु आप जी कभी उस डरावने वन को अवगाहन न कर सकते, परन्तु दूर से आदमियों की बात करने की आवाज़ कानों में पड़ी और घोड़ों की टापें सुनकर आप डरे कि कहीं सिक्ख न आ रहे हों, इस डर के तहत आप विवश हो भाग लिये।

-कांड ९-

धरती के गड्ढों और ढलवानों में रहने वाला नीची जाति रखने वाला जल, समुद्र में बैठा चाहे कितने जोश, यत्न और बहादुरी से सूर्य की ओर घूरता है, परन्तु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। बल्कि सूर्य उसको समुद्र से बिछुड़वा देता है। इस गुस्से में कभी अदृष्ट रूप में सूर्य की किरणों का तेज घटाना चाहता है कभी दृष्ट रूप धारण कर (बादल बनकर) सूर्य की धूप का मुँह मोड़ देता है और कभी सूर्य के साथ मुठभेड़ करने के लिए ऊँचा चढ़ता बारिश बर्फ के गोले बनकर गिर पड़ता है। बेचारा वतन के बिछोह में सिर धुनता घूमता है। सूर्य की चलायी हुई तीखी पवन उसको आगे लगाये घूमती है। जब कभी वह बादल बन पहाड़ों पर जा चढ़ता है तो उनकी डरावनी शक्लें, भयदायी चोटियाँ, सहमाने वाली घाटियाँ और कँपकंपी देने वाले घने वृक्षों की पंक्तियाँ और मौसम की अत्यधिक ठंड से सहमकर रो पड़ता है तब खड्डों में सिर टकराता, नीचे गिरता पड़ता मैदानों में पहुँचता है। यहाँ से धूल मिट्टी में लेटता वतन को ढूँढता हुआ कभी समुद्र में जा पहुँचता है। वहाँ सारी गंदगी और थकावट दूर होती है। जैसे डर से व्याकुल जल पहाडों के भय से ठिकाने जा पहुँचता है वैसे ही डरपोक प्राणी

भयभीत हुए कभी-कभी अपने मनसूबों में कामयाब हो जाते हैं। इस प्रकार भय का दान पंडित जी दौड़ते-दौड़ते नगर पहुँचे, सीधे सरदार के महलों में पधारे। वहाँ भला इस समय कौन कान खड़े किए बैठा था, जो पुरोहित जी की बात सुन लेता? दरबान की सख्ती देखकर आप कुछ ढीले पड़ गए। कुछ चापलूसी की, कुछ पैसा देकर हाथ गर्म किए। इच्छापूर्ति हो जाने पर कुछ नर्म होकर दरबान ने जा खबर की और झूठी खुशामद की अब ऐसी-ऐसी बातें सुनायी कि हुशियार बेग जमादार के नाम आदेश चढ़ गया कि कुछ शस्त्रधारी सवार साथ लेकर और पंडित जी को डोले में बिठाकर इसी समय कूच कर दें। आखिर तैयारी होकर कूच हुई। अँधेरी रात, वन का रास्ता, पंडित जी की याददाश्त रास्ता भूल गई, सिपाही झुँझलाते हैं, उसको डोले में देखकर जलते हैं परन्तु रिश्वत ने भेदिए का काम बनाया हुआ था, कौन उलटा सकता था? इस तरह खीझते-खीझाते, भूलते-ढूँढते तीसरे पहर के बाद वहाँ जा ही पहुँचे। माँ पुत्र तो सोये हुए थे और सिंह जी आसा की वार का पाठ कर रहे थे। उनकी मधुर वाणी ने भेदिए के कानों में जाकर उनको रास्ते का पता बता दिया। अब तो झटपट सभी वहाँ पहुँच गए। चन्द्रमा का प्रकाश हो रहा था। सिंह जी ने उठ कर रोकने की कोशिश की, तलवार चली, एक सिपाही का सिर कट गया। बाकी सिपाहियों ने इकट्ठे होकर आप को पकड़ लिया। माँ पुत्र गहरी नींद से जागते ही सिर उठाती खुम्ब की तरह पकड़े गए, हाथों की ताकत का कोई वश नहीं चला, तीनों की मुश्कें कसी गयीं और कूच किया।

तुर्क सवार थक रहे थे, और जल्दी पहुँचना चाहते थे, सिपाही कुछ बहुत प्रसन्न नहीं हुए थे और मन ही मन दाँत पीस रहे थे क्योंकि एक साथी मरवा आये और पकड़ कर सभी एक ही मर्द

लाये, साथ में एक बच्चा और एक औरत। हुशियार बेग ने सोच-सोच कर जल्दी पहुँचने की यह तरकीब निकाली कि भेदिए को पालकी में से उतारकर बीबी (औरत) और बच्चे को बिठा दिया जाये और कहारों द्वारा पालकी उठाये जाने पर एक-एक कहार को आधे-आधे मील पर साँस लेने के लिए छोड़ा जाये और भेदिए को उसकी जगह लगाया जाये। इस आदेश के होते ही पहाड़ों की चोटियों पर पड़ी बर्फ की तरह भेदिए जी को नीचे आना पड़ा और उस घास की तरह जो घोड़े के ऊपर लदा हुआ होकर भी उसी का चारा बनता है, पंडित जी को पालकी की सवारी करने के स्थान पर सवारी बनना[१] पड़ा। परन्तु फिर हुशियार बेग को मालिक का डर सताने लगा कि कहीं नवाब साहब भेदिए की बेइज्जती पर क्रोधित न हो जायें, ऐसा हुआ तो क्या करेंगे? फिर उसको पालकी में बिठाकर अपनी जान पर कुछ देर का दुख सहकर बुरे हाल और बुरी चाल से रास्ता ख़त्म किया और सिंह जी को कैदखाने पहुँचाया जहाँ एक कोठरी में आप बंद किए गए।

ऐसे-ऐसे महात्माओं के साथ ऐसे उपद्रव होते देखकर मानों रात का कलेजा भी फट गया। रात के अँधेरे में हुए पापों को देखने के लिए सूर्य देवता निकल आया परन्तु शर्म की मारी रात पूर्व की दिशा में ऐसी धुंध छोड़ गयी जिससे सूर्य भी कुछ देर रक्तवर्णी बादलों में से यत्नपूर्वक सिर निकालता प्रतीत हो रहा था। कोई पहर दिन चढ़े हाकिम की कचहरी लगी और कैदी आप साहिब के रू-ब-रू हाज़िर किए गये। तीखी रोशनी के सामने जैसे आँखें बंद हो जाती हैं, वैसे सिंह जी के तेज सम्मुख हाकिम जी सकुचा गए

१. सवारी करना-घोड़े आदि पर चढ़ना। सवारी बनना-घोड़े की तरह सवार के नीचे आना।

और हैरान हो-होकर तीनों प्राणियों को देखते रहे। इस चुप को भंग करने के लिए एक मुल्लां साहिब जी, जो सभा में थे, बोले :-

हुजूर! आपने देखा इश्क काफिर है, इश्क की दौलत हुस्न (सुन्दरता) है जो काफिर ने काफिरों को दे रखी है। कैसे सुन्दर तीनों चेहरे मानों सूर्य के तीन टुकड़े हो गए हैं, अथवा कोई टूटते तारे का रूप धारण कर आ खड़े हुए हैं। कैसे चुपचाप हाथी दाँत के पुतलों की तरह खड़े हैं, ऐसे लगता है किसी कारीगर ने पारे के खिलौने बनाये हैं अथवा कुदरत (परमेश्वर) ने बिजली को देहधारी कर दिया है। स्वर्ग में ज़रूर ऐसे ही (सुन्दर) रहते होंगे? हाय अफसोस! क्या ऐसी सुन्दरता के पुतले काफिर रहेंगे? या मरकर नरक की आग भरेंगे? काश! ये मोमिन होते और स्वर्ग में पहुँचकर वहाँ की रौनक बढ़ाते। जनाब, इन सुन्दर प्राणियों को दीन में लाओ, इनको स्वर्ग की ज़ीनत (सजावट) बनाओ, आप के सारे गुनाह माफ हो जायेंगे। क्या इनके स्वर्ग में चले जाने पर रोशनी की आवश्यकता रह जायेगी? हाँ, जनाब मेरी राय यह है कि इनकी जान बख्श दी जाये, मारा न जाये, दीन में ले आया जाये। मर्द समझदार दिखायी देता है, जान बचने की कद्र करेगा और दीन कबूल कर लेगा।

ये दीन सम्बन्धी जोश भड़काने वाले शब्द इस तरह पड़े जैसे किन्ही दो पदार्थों को रगड़ने पर गर्मी उत्पन्न होती है वैसे ही मुल्लां के वचनों और श्रोताओं के दिलों की रगड़ ने गर्मा गर्म जोश भरा और सभी बोल पड़े कि 'हाँ, इनको ज़रूर दीन में लाओ।'

मुल्लां-हाँ जी, नेकी और पूछ पूछ, जितने पल इनके कु० में बीत रहे हैं, सब व्यर्थ और हमारे सिर दोष है। जल्दी दीन की

पोशाक पहनाओ! आहा! कैसे भाग्य वाले जीव हैं? जीव नहीं; हुस्न ने रूप धारण किया हुआ है, भला हुआ जो हुस्न इस तरह काबू आ गया। अब तो सारी कौम को लाभ पहुँच जायेगा। क्योंकि भाई मोमिनों! जब हुस्न ही मुसलमान हो गया फिर पीछे क्या बचा? आगे बहादुरी भी तो हमने मोमिन बना ही ली है। काफिरों के घर बहादुरी होती थी वह हम दीनी जोश की हिकमत द्वारा अपने दीन में ले आये हैं। क्या अच्छा हो अगर दुनिया के सब उत्तम पदार्थ मोमिनों के ही पास आ जायें।

इस तुर्क हाकिम का एक मुँह चढ़ा साथी बहुत मसखरा था और योग्य अयोग्य कह बैठे तो हाकिम को बुरा नहीं लगता था तथा सारे कर्मचारियों को सहना पड़ता था, मुल्लां की बात सुनकर झट बोल उठा :–

ठीक है हज़रत! ठीक, परन्तु (मुँह बनाकर) अब वह 'बहादुरी' कड़ाह प्रसाद पर मोहित हो गयी है। इसलिए आप उसकी टाँगें-बाहें बाँधे जिससे लूली-लँगड़ी होकर आपके घर ही पड़ी रहे, बाहर न जा सके, नहीं तो अमृत पीकर आपको ही भारी संख्या में मारने लगेगी।

मुल्लां–ठीक है, अब आज सिक्ख काबू आ गए हैं यहीं से काम शुरू करते हैं। देखो ऐसे काम अल्लाह ने रास किए हैं, मियाँ आरिफ खाँ के घर संतान नहीं है, यह गुलाब का पौधा (बाल) मोमिन बना कर उनको बख्श दो, जिससे घर में चिराग रोशन हो जाये और चार सूखी गोदें हरी भरी हो जायें। आपके रसीद लिखने वाले (किसी वस्तु पर कब्जा करके रसीद का लिखना) मुन्शी की जगह खाली है, यह सिक्ख चेहरे से पढ़ा लिखा प्रतीत होता है,

इसको वहाँ नौकर लगाकर मियाँ दीन की लड़की के साथ निकाह कर दो, मेरा घर बीवी की मौत ने वीरान कर दिया है, इसलिए यह बीबी उस उजड़े घर को बसाकर आपकी प्रसिद्धी करेगी कि ऐसे दीन वाले नवाब साहिब हैं जो मुल्लाओं और काज़ियों पर ऐसी सुन्दर मेहरबानियाँ करते रहते हैं। नवाब साहब मुसकराये। मज़ाकिया भाँप गया कि बीबी (औरत) को नवाब साहब हथियाना चाहते हैं और मुल्लां जी कुछ अपना हक जमा रहे हैं, नवाब साहब को इशारा करके बोल उठा:–

'पंडित पांधे काज़ी मुल्लां चारों से ख़बरदार।'

इसी समय एक आदमी आया जिसने बताया कि अमके गाँव के प्रतिष्ठित चार पाँच आदमी जो इनको पकड़ने के लिए पहले जंगल में गए थे, ये उनको घायल करके फेंक आये हैं, तब सारे दरबारियों के चेहरे लाल हो गए, और क्रोध से काँप उठे। किसी को भी औरत और बच्चे की बहादुरी पर श्लाघा करने का उत्तम ख़्याल न पैदा हुआ, क्रोध ही छा गया। हाकिम साहब को भी गुस्सा आया परन्तु शील कौर का सुन्दर रूप देखकर आपने हुक्म दिया : ले जाओ मरदूदों को कैद में। दूसरा हुक्म दोपहर को देंगे। दरबार उठ गया, और सभी अपने-अपने ठिकाने को चले गये, हाकिम साहब और मसखरा महल को चले गये। शराब पीने से पहले मसखरे ने हाकिम को पक्का कर दिया कि इनको मुसलमान बना लो और ज़्यादा ज़ुल्म न करो, औरत को महलों में दाखिल कर लो, ऐसी बेगम मिल सके असंभव है। उधर आप मसखरा साहिब जेलखाने पहुँचे और सिंह जी को समझाने का यत्न करते रहे, परन्तु वहाँ कुछ पेश नहीं गई। फिर संध्या समय सिंह जी को महलों में बुलाकर समझाया, धमकाया, ललचाया और डराया गया; परन्तु "पत्थर बिलकुल नहीं भीगता चाहे सौ वर्ष पानी के अंदर बसे

(पत्थर मूल न भिज्जई सै वरिहां जल अंदरि वसै)।" अब पत्नी पुत्र एक कोठरी में और सिंह जी एक कोठरी में अलग-अलग बंद किये गये।

-कांड १०-

दिन ग्रीष्म ऋतु की बर्फ की तरह ढल गया था कि नवाब साहिब, मुल्लां, मसखरा तथा और कर्मचारी एक खुले मैदान में पहुँचे और दरी बिछाकर बैठ गए। भुजंगी और सिंहनी मुश्कें कसे हुए एक ओर नंगी तलवार के पहरे अधीन किए गये, दोनों के पैर खूँटों से कसे गए। सामने की ओर एक टिकटिकी लगायी गई और सिंह जी के हाथ पैर और टाँगें उसके साथ जकड़े गये। मुल्लां जी ने पूछा : ऐ शेर! शेर बन, क्यों अपने प्राणों को दुखों के हवाले करता है। अभी भी समझ, तो छोड़ा जाये।"

सिंह–हे राजमद वालो! जो जी चाहे करो परवाह नहीं, कौन चमड़ी को प्यार कर प्राणों को पतित करे! कौन सोने के बदले कौडी लेता है? यह शरीर सदा नहीं, अंत मरेगा, मरने दो।

सिंह जी का वचन सुनते ही एक गहरे काले रंग वाला, रात का भी बाबा, जिसकी सूरत को देखकर भय आये, निकला और पूरे बल के साथ खींचकर सिंह जी की पीठ पर कोड़े मारने लगा। कोड़ा क्या लगता है? छवी[1] की तरह चमड़ी साथ ही उड़ा ले जाता है, धोबी पटड़े पर कुछ तरस करता है परन्तु हिंसक जल्लाद ने सिंह जी की पीठ पर माँ का सारा पिलाया हुआ दूध निकाल दिया। पीठ पहले लाल हुई, फिर छिली, फिर छाले उभरे और कहीं कहीं चर्बी निकल आई। लाड प्यार और सुख में पले बहादुर ने, जिस ने कभी उई नहीं बर्दाश्त की थी, इस बहादुरी से बर्दाश्त किया कि एक

१. एक शस्त्र

बर्दाश्त करने के यत्न और दूसरे असहनीय पीड़ा ने बेहोश कर दिया। सिंहनी इस कष्ट को देखकर पिंजरे में पड़े शेर की तरह तड़प रही थी। प्रत्येक कोड़े के लगते ही कलेजा मुँह को आ जाता है, परन्तु कोई वश नहीं चलता। चाहती है कि आँखें बंद कर ले और कानों में अँगुलियाँ दे ले, परन्तु हाय किस्मत! हाथ भी बँधे हुए हैं, कान कौन बंद करे? आँखें मूँदती है, परन्तु कोड़े की ध्वनि से उबाल सा सिर को चढ़ता है और आँखें काँप कर बंद नहीं रहतीं। संगमरमर पर बूँदें पड़ने की तरह गालों पर आँसू बह रहे हैं, मानो सारे शरीर का रक्त देह से दुखी होकर आँखों के रास्ते बह चला है। आह कैसी कठिन विपदा में ग्रसित हुई है।

भुजंगी की ओर देखो, हिलते पानी में चाँद की मूर्ति की तरह थर-थर काँप रहा है, आँखों में से आँसुओं की बाढ़ जारी है, और 'हे गुरु! पिता की रक्षा कर' का दर्दनाक शब्द ऐसा कलेजा चीर कर निकलता है कि बेचारे की घिग्घी बँध गई है, गला बैठ गया है, प्यारा चेहरा घटाओं के नीचे आए चन्द्रमा की तरह मद्धम पड़ गया है, परन्तु राजमद वाले शक्तिशालियों के हृदय में रत्ती भर तरस नहीं आता, बेहोश होते ही कोड़े बंद किए गये, मुँह में पानी टपकाया गया। परन्तु बेहोशी जैसी थी वैसी ही रही। इसी तरह उठाकर ले गए और तीनों अलग-अलग कोठरियों में बंद किए गये। जब रात थोड़ी सी बीती तो सिंह जी धूल में उलटे बेहोश पड़े कुछ-कुछ होश में आए, आँखें खोलकर देखते हैं तो कुछ दिखाई नहीं देता, शरीर अकड़ गया है, किसी तरफ मुड़ता नहीं है, पीठ कसक रही है, बहुत घबराहट हो रही है। पास कोई सहारा देने वाला नहीं, तरस खाने वाला कोई नज़दीक नहीं। हाँ माँ के राम और लाल! तुझे माँ रोक रही थी बच्चा! समझकर कदम रख, परन्तु तुम

कहते थे कि नहीं प्रेम का रास्ता ही ऐसा है, अब देखो प्रेम ने क्या रंग जमाया है, चमड़ी तक उधेड़ दी है। बताओ इस समय तुम्हारा कौन है? ठीक है, हम तो सिंह जी के क्लेशों को देखकर बिलबिला उठे हैं परन्तु उनके अभ्यासी मन में गुरु की मूर्ति विराजमान है, जो इस कष्ट को सहारा दे रही है, और दुखों तथा पीड़ाओं से हटाकर मन को अपनी ओर खींच रही है, पीड़ा भरोसे को शिथिल नहीं कर रही, बल्कि होश धीरे-धीरे बढ़कर और अधिक अन्दर की ओर जुड़ रही है।

अब कुछ-कुछ आवाज़ कानों में पड़ने लगी, दरवाजे के खटकने की आवाज़ आई। तुरन्त दरवाजे खुले और एक लम्बा युवक सीधी दाढ़ी वाला, फरिश्तों जैसे चेहरे वाला अंदर आया। पाँच सात सेवक उसके साथ थे। मशाल जल रही थी। इन कैदियों का दरोगा तथा और कर्मचारी सहमे और काँपते हुए पीछे-पीछे थे। सिंह जी की दशा देखकर वह भला आदमी आँखों में जल भर लाया और दरोगे की ओर देखकर बोला–

'काफ़िर शैतान, बरबाद करे खुदा तुझे और तुम्हारे मालिक को! निराश्रयों पर यह जंगली (असभ्य) अत्याचार! खुदा के आगे जाकर क्या जवाब दोगे? मुँह काला होगा तुम्हारा और जलोगे दोज़ख़ की आग में। अपने सेवक को बोला–'चारपाई इधर लाओ।' तुरन्त चारपाई लाई गयी, आपने सिंह जी के चरण चूमे, और जारों जार रोते हुए बड़े सहारे (आराम) के साथ सिंह जी को उठाकर चारपाई के ऊपर उलटा लिटाया और उठवा कर ले चले। दरोगा कुछ आपत्ति करने लगा कि हाकिम का हुक्म नहीं मिला, मैं मारा जाऊँगा, आप 'मुसलमान होकर' यह क्या कर रहे हैं?

भला पुरुष (आँखें लाल कर) – 'चल दूर हो नामाकूल! मुसलमान होकर? क्या मुसलमान नाम ज़ालिम का है? हैं, मुसलमान नाम खुदा पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति का है जो प्रत्येक इंसान को खुदा का मानकर प्यार करे। मुसलमान का फर्ज़ इंसाफ है, रहम है, जुल्म (अत्याचार) नहीं। ऐसा कहते हुए ये मुसलमान फकीर जी सिंह जी को साथ लेकर चम्पत हो गए। शोक! इनको पता नहीं था कि सिंह जी की पत्नी और पुत्र साथ की कोठरियों में तड़प रहे हैं।

इस भले पुरुष का डेरा शहर से बाहर कुछ दूरी पर था, एक वन में कुटिया बनाकर रहते थे। जाति के ये सैय्यद थे और अल्लाह में विश्वास रखने वाले फकीर थे। आप भाई मनी सिंह जी के पास बहुत समय तक रहे थे और उन्हीं की कृपा से फकीर बन गए थे। अभी छोटी अवस्था ही थी कि सिंह जी शहीद हो गए। वैरागी होकर आपने यहाँ वन में डेरा किया और तपस्या करते रहे। इनकी करामात की इतनी धूम थी कि सारे इलाके के लोग डरते थे। क्या हाकिम क्या सिपाही कोई चूँ नहीं कर सकता था। आज रात जब आपको सिंह जी के कष्टों की सूचना मिली तभी दौड़े आए और किसी की परवाह न करते हुए उनको जबर्दस्ती निकलवा कर ले गए। उस समय जब तुर्क हाकिम अन्याय कर रहे थे साबर शाह जैसे सैय्यद मौजूद थे जो अत्यधिक भलाई किया करते थे। सैय्यद साहब जब बिजय सिंह को ले कर घर पहुँचे तो सिंह जी की सूरत देखकर भाई मनी सिंह जी याद आ गए, और कलेजे में ऐसी कसक उठी कि काफी देर तक रोते रहे। अपने गुरु के तो अंतिम दर्शन नसीब नहीं हुए थे, परन्तु इनको उनका रूप जानकर सेवा करने लगे और ऐसी सेवा की कि कुछ समय में ही सिंह जी एकदम ठीक हो गए।

उधर का हाल सुनिए–हाकिम को जब यह ख़बर पहुँची कि साबर शाह जी सिंह जी को निकाल कर ले गए हैं, तब साँप की तरह तड़प कर रह गया। बहुत चाहा कि कुछ करूँ, परन्तु मुसलमान फकीर का डर इतना बैठा हुआ था कि कोई आँखें सामने नहीं कर सकता था और तो कोई वर्श नहीं चला, परन्तु शील कौर और वरियाम सिंह को महलों में ले गया और उन्हें डराना शुरू किया जिससे वे अपना धर्म छोड़ दें, परन्तु किसी ने एक न मानी। एक दिन शील कौर को चक्की पीसने लगा दिया और लड़के को भी हल्के-हल्के कोड़े मरवाये। उधर साबर शाह जी को सिंह जी द्वारा पुत्र और पत्नी के कैद होने का पता लग गया था। सिंह जी तो उनकी सेवा द्वारा ठीक हो रहे थे और फकीर जी शील कौर को छुड़वाने का उपाय सोचते थे, परन्तु कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। क्योंकि चाहे फकीर जी का भय सभी मानते थे, परन्तु खास महल में जाकर बहुत जोर शोर से हाथ डालने में फकीर जी भी रुक रहे थे; कई दिन फकीर जी ने विचारों के घोड़े दौड़ाये, आखिरकार यह सोच कर कि महल में जा घुसें और अचानक जाकर उनको भी छुड़ा लायें, जो होगा देखा जायेगा, सिंह जी और अनुयायियों को साथ लेकर आ गए। दालान में प्रविष्ट हुए थे कि तभी ऊपर अपनी कोठरी में से सिंहनी और भुजंगी ने बिजय सिंह के दर्शन किये, उनको स्वस्थ देखकर मन प्रसन्न हो गया, सब दुख भूल गए। शुक्र है करतार का कि सिंह जी सही सलामत नज़र आये परन्तु अफसोस! मिलन होने के स्थान पर लम्बा बिछोड़ा पड़ गया। फकीर जी अभी सीढ़ियों में ही थे कि हाकिम ने ऊपर से सूचना पाकर उनको तुरन्त दूसरे रास्ते से बाहर निकाल दिया और हुक्म दिया कि सवारों का दस्ता साथ लगाकर लाहौर भेज दो। आप नीचे आकर

आगे बढ़कर उनको बहुत आदर सत्कार के साथ मिला। जब फकीर ने पूछ ताछ की तो पता चला कि दोनों लाहौर भेजे जा चुके हैं। यह पता मिलने पर आप निराश लौट आये। जब सिंह जी को पता लगा तो वे बहुत उदास हुए और फकीर जी से आज्ञा माँगने लगे कि लाहौर जाकर सिंहनी की खोज और रक्षा करें।

-कांड ११-

''जे को सतु करे सो छीजै तप घरि तपु न होई॥
जे को नाउ लए बदनावी कलि के लखण ऐई॥''

सद धर्म का पालन करने वालों को दुनिया दुख देती है, नामस्मरण वालों की बदनामी होती है और घर-घर वारें चल पड़ती हैं, अंत यहाँ तक होता है कि दुनिया उनके प्राणों को भी नहीं छोड़ती; परन्तु वाह धर्मात्माओ! आप प्राण देते हुए भी हँसते हो। कारण यह है कि इन लोगों के हृदय में सभी कारणों का कारण परमात्मा ऐसे प्रकाशित होता है जैसे दिन में सूर्य। जैसे चाँदनी में जीव नहीं घबराते वैसे ही धर्मात्मा जीव परमात्मा से मिलन होने पर उसके प्यार और प्रकाश में नहीं डगमगाते।

शील कौर और भुजंगी लाहौर के लिए रवाना किए गये। जिस जत्थे में धर्मात्मा जीव चले थे वह पाँच सात और सिक्ख कैदियों की मण्डली थी और कुछ बादशाही अपराध करने वाले और कैदी भी थे। करीब पच्चीस तीस आदमी औरतों की भीड़-भाड़ थी, और एक दस्ता सिपाहियों का, दो हवलदार और एक जमादार साथ थे। ये सिपाही कठोरता का काम करते-करते पत्थर चित्त हो गए थे और इनके जमादार का डाकू टोलियों के साथ सम्बन्ध था, जिनकी लूट में से हिस्सा मिलने पर यह मालामाल हो रहा था और अपना गाँव बसा लिया था। नौकरी इस

लिए करता जा रहा था कि जब कभी उसके लुटेरे मित्र पकड़े जाते तब किसी न किसी बहाने उनको छुड़वा देता था। उस अँधेरे समय कई ऐसे हाकिम होते थे जो ऊपर से तो सरकारी नौकर बने रहते थे और अन्दर से प्रजा का नुकसान करवाते रहते। जब बादशाहों तक खबरें पहुँच जातीं तो सिक्खों के माथे थोपकर छुटकारा पा जाते और बहुत बार निर्दोष सिक्खों को पकड़कर आगे धकेल देते कि इन्होंने डाके मारे हैं और देश को लूटा है। इस प्रकार अनेक निर्दोष परमेश्वर के प्यारे सिक्ख, जो निर्दोषों को मारने का ढंग भी नहीं जानते थे और धर्म की कौडी बिना अफीम के डोडे भी अंगीकार नहीं करते थे, प्राण गँवा बैठते थे। अगर बड़े हाकिम कुछ दिल वाले होते तो सच और झूठ का निर्णय होता परन्तु वे तो पहले ही सिक्ख नाम से गुस्से में भरे रहते थे। जब छोटे हाकिम सिक्खों पर दोष लगाते तो वे तुरन्त विश्वास कर लेते, सच झूठ को परखने का यत्न न करते। जैसे आजकल अदालतें बनी हुयी हैं, पुलिस अलग है, अदालतें अलग हैं फिर एक से दूसरी और दूसरी से आगे सूबे (प्रांत) की बड़ी अदालतें हैं, कानून बने हुए हैं और कानून के अन्तर्गत चलने के लिए भी कानून लिखे हुए हैं और वकील मदद के लिए हैं आदि। चाहे बुरे हाकिम इस सिलसिले में भी बुराई कर सकते और कर जाते हैं परन्तु कोई तरीका तो है और इस तरह सच झूठ के परीणाम का भी बहुत मौका होता है। न तो इस प्रकार के कोई तरीके उस समय थे और न ही अकबर जैसा चुनाव हाकिमों का था कि नेक धार्मिक ढूँढ़-ढूँढ़ कर रखे जायें और न्याय करने का पूरा-पूरा यत्न हो। न ही महाराजा रणजीत सिंह वाले काम : अच्छा चुनाव, अपनी निगरानी और न्याय की ओर खास ध्यान देने का तरीका था। इस समय तो अन्याय कई तरह से प्रवृत्त था, जैसे

पठानों का अंतिम समय अंधकार का था, जिसके सम्बन्ध में सतगुरु नानक देव जी ने आँखों देखा हाल बताया है :-

"राजे सींह मुकद्दम कुत्ते।। जाये जगाइनि बैठे सुते।।"

और भाई गुरदास जी ने बताया है :-

"राजे पाप कमांवदे उलटी वाड़ खेत कऊ खायी।।"

उसी तरह मुगलों के इस अंतिम समय भी जोर जबर्दस्ती का प्राधान्य था*।

जब ये कैदी चले तब एक-एक कैदी के साथ दो-दो सिपाही किये गये, कैदियों के हाथ भी बँधे हुए थे। इस प्रकार दुखों के रास्ते काटते हुए जब करीब दो दिन बीत गए तब जमादार साहिब की सुबह-सुबह शील कौर पर नज़र पड़ गयी उसके कोमल हाथों में नील पड़े और घिसट लगकर छिलने के क्लेश को देखकर इसका कठोर हृदय भी पिघल गया। जमादार ने माँ पुत्र की हथकड़ियाँ उतारने का आदेश दिया और एक सिपाही अतिरिक्त उनके साथ कर दिया। रात आ गई, एक सराय में डेरा डाला गया, सभी कैदी उसी तरह दुखों में पड़े रात बिताने लगे, परन्तु शील कौर

---

* भाई कर्म सिंह जी कई वर्षो तक इतिहास की खोज करके उस समय के हाकिमों के सम्बनध में लिखते हैं-

१. उन दिनों शाही प्रबन्ध इतना ढीला था कि छोटे-छोटे गाँवों को बलशालियों की टुकड़ियाँ हमेशा लूट लिया करती थीं। (बंदा बहादुर, पृष्ठ ३२)

२. उन दिनों बाहर के गाँवों में हमेशा भूख छायी रहती थी, क्योंकि रोजमर्रा के डाके, कानूनगो और कर्मचारियों की सख्तियाँ निर्धन जमींदारों के पास कुछ नहीं रहने देती थीं। (पृष्ठ-४३)

३. तुर्कों के अत्याचार, जो हाकिम भी नहीं थे, ऐसे बताते हैं :- आस पास के गाँवों के लोग काज़ियों, सैय्यदों और शेखों के अत्याचारों से उकताये हुए थे। (पृष्ठ-५७)

और भुजंगी को उलटे आज काम आ पड़ा, अच्छे साफ कमरे में ठिकाना मिला, पकी पकायी अच्छी रोटी खाने के लिए आई, सोने के लिए कुछ बिस्तरे आदि सामान भी आ मौजूद हुये।

शील कौर का ज्ञानवान मन सोचता था कि क्या कारण है जो इस तरह भाग्य पलटा खा रहा है? चित्त में देखती थी कि कोई और बला आ रही प्रतीत होती है। जैसे अँधेरी आने से पहले पवन हिलना बिलकुल बंद कर देती है, मानो है ही नहीं वैसे ही जब जब बेचारी पर विपदा आई, पहले पूर्ण चुप्पी ने मुँह दिखाया और फिर विपदा ने आ दबोचा। ऐसी बातें सोचते-सोचते उसने जिगर के टुकड़े को तो सुला दिया परन्तु आप बैठकर पाठ करने लगी। करीब आधी रात बीत गयी। वाणी के पाठ की मधुर सुर ने बैकुंठ का प्रभाव बना दिया और विचलित करने वाले पल आनन्द में व्यतीत हो गए। फिर, शील कौर नाम का स्मरण करती हुई अन्तर्लीन होती चली गयी, इतनी लीन हुई कि शारीरिक अंग भी हिलने बंद हो गए। अन्तर्मन का सहज प्रवाह वाहिगुरु जी में लगकर जुड़ गया। जब सारी दुनिया सो गयी और कोई जागता न रहा, बिना रोगी और योगी के, अथवा इस सारे प्रसार की माँ कुदरत के, तब शील कौर का दरवाजा खड़का परन्तु वह हिली नहीं। कुछ क्षण बीतने पर दरवाजे की चूल उखाड़ी गयी और एक सिपाही ने खबर सुनायी कि 'जमादार साहिब याद कर रहे हैं।' परन्तु शील कौर शांत टिकी रही, उत्तर तक मुँह में से नहीं निकला, मानो कोई पत्थर की मूर्ति रखी हो। जैसे-जैसे वह बुलाये उस भजन मूर्ति की आंतरिक वृति इकट्ठी ही हुई रही। सिपाही को उसकी ओर देखकर कुछ भय आया, भय खाकर हक्का बक्का हो कर पीछे मुड़ गया और जाकर खबर सुनायी कि वह तो पत्थर हो गई है और उसकी ओर देखने पर दिल

भय से धड़कता है। इस समय अँधड़ आया हुआ था। वहाँ से और आदमी आए, जब उन्होंने आकर अन्दर की ओर झाँका तो वे भी सहमे। एक का सिर घबराया और दूसरे का कलेजा काँपा। जैसे साँप निकलने पर लोग दूर से ही दीपक आगे कर-कर के देखते हैं, परन्तु आगे की ओर एक भी कदम नहीं उठाते, वैसे ही ये सिपाही दीपक आगे की ओर करके देखने का यत्न तो करें, परन्तु पैरों को दहलीज के अंदर न रखें, आखिरकार ये भी भयभीत होकर वापिस लौट गए। शील कौर ऐसी निमग्न थी कि उसी समय कोई सिर काट देता तब भी उसको पता न चलता। शील कौर बेहोश नहीं थी, परन्तु अपने आप में निमग्न ऐसे ध्यान में लीन थी मानों बेसुध ही हो, परन्तु वह थी लिव की अन्तर्मुख दशा में।

जब जमादार ने सुना कि वह स्त्री पत्थर हुई बैठी है और उसके करीब जाते हुए दिल भय से धड़कता है और एक से अधिक व्यक्ति इस बात की साक्षी भरते हैं, तब उसका दिल भी कुछ सहमा। पाप करते समय दिल चाहे कठोर हो जाता है, परन्तु अगर कभी भय की नोक उस समय हृदय में चुभ जाये तब कायरता ज़ोर पकड़ लेती है।

जमादार जी थे एक कुलीन पुरुष, आचार साहित्य भी पढ़े हुए थे, दिल के भी कठोर नहीं थे। अगर कुछ था तो कुसंगति का प्रभाव था और अपने महकमे के बुरे लोगों की देखा देखी बुरा असर ले लेकर बुरे हो रहे थे। अब जब सहम छाया तो अपने धर्म में, जो समाचार भले पुरुषों के पढ़े हुए थे और दुष्टों की यातनाओं अधीन खुदा की उनसे मैत्री के समाचार सुने हुए थे, सभी याद आ गए। दानियाल को शेरों के आगे फेंकना और शेरों द्वारा उसके पैर चूमे जाने, फरऊन द्वारा अत्याचार किए जाने पर भी मूसा का बाल भी बाँका न होना, सभी घटनाएँ आँखों के आगे आ खड़ी हुई। दिल

में गड्ढे पड़ते जायें, उन गड्ढों में किए कुकर्मों के डंक चुभते जायें, परन्तु अपने सिपाहियों को पता न चल जाये कि यह भी डर गया है, इसलिए हौंसले की बातें करता जाये। इस तरह हौंसला करते हुए भी रंग उड़ने लग पड़ा, धैर्य वाली सूरत बनाये परन्तु बने ना। हौंसले का दिखावा करने के लिए आप उठे और चले कि चलो देखें क्या है? जब आप बाहर निकले तो हवा के एक झोंके से दीपक बुझ गया, घनघोर घटा से घिरी और काली बहरी रात ने और भय का समां बाँध दिया, किसी ओर से उल्लू की आवाज़ आई, कलेजा और सहम गया। अँधड़ तो चल ही रहा था अब धूल मिट्टी उड़ाने के साथ ही गरज भी रहा था। अँधेरे में गोल-गोल छल्ले आँखों के आगे आयें, जो बड़े-बड़े होते मुँह खोल-खोल डरायें और उड़ते जायें और उनके स्थान पर और आते जायें। आखिर फिर ढक-ढका कर दीपक आया और फिर चल पड़े, जब कोठरी के करीब पहुँचे तब दीपक वाले को ठोकर लगी, दीपक गिर पड़ा और उठाने वाला धरती पर आ पड़ा। जमादार ने कोठरी के अंदर दृष्टि डाली तो क्या झलक मिली कि मानो आग जल रही है, परन्तु स्त्री और उसके पुत्र को जलाती नहीं। जमादार ने दहलीज पर पैर रखा तो आँच लगी, डर कर पीछे हटे। इस के साथ का एक सिपाही क्या देखता है कि एक शेर माँ और पुत्र के चारों ओर परिक्रमा कर रहा है और घूर-घूर कर इनकी ओर देख रहा है। फिर उसे ऐसा लगा कि शेर गरजा और सिपाही डर कर गिर पड़ा। बाहर बिजली कड़क रही थी, अंदर बिजली की चमक से भर गया था, अब फिर बाहर से कड़कती गर्जना उठी, झलक पड़ी कि एक कोई अल्लाह वाले साहिब खड़े हैं, और अज़राइल फरिश्ते को कुछ ऐसे कह रहे हैं—"इन सिपाहियों को और जमादार को गंधक के जलते हुए दोज़ख में डाल दो।" बारिश अब मूसलाधार बरस रही थी और

अँधेरी भी ज़ोरों से चल रही थी सिपाही को क्या झलक दिखायी दी कि फरिश्ता गुरज (एक शस्त्र, गदा जैसा) उछाल रहा है, सहम खाकर इसका सिर चकराया और गिर पड़ा। जमादार भयभीत हो रहा था, सोच भी रहा था कि यह भय किस प्रकार दूर हो, तो अब दूसरे सिपाही को मुफ्ती रुकनदीन की ओर भेजा कि जाकर उसको जगा लाये, जिससे वही कोई कलाम पढ़कर इस भय को दूर करे। काँपते दिल से सिपाही उधर गया। जमादार भारी सहम में था। बाबा बंदा बहादुर के समय से आम मुसलमानों में पक्का ख्याल बैठा हुआ था कि सिक्खों के पास कोई कलाम है जो बहुत तासीर (प्रभाव) वाला है। जमादार सोच रहा था कि यह औरत भी उन कलामों की जानकार होगी जो लोग बताते हैं कि सिक्ख लोग पढ़कर अपना आप बचा लेते हैं। ठीक है, आज सारा दिन जब मैं इसे देखने आता रहा हूँ तो इसके ओंठ फड़कते ही दिखाई देते रहे। यह ज़रूर कोई कलाम पढ़ रही थी, क्या किया जाये? अब मुफ़्ती साहब आ गए। आये तो ज़रूर परन्तु सहमे हुए कोठरी का जो समाचार सुन चुके थे ऐसा डर मन पर बैठा था कि आप आकर हौंसले के साथ खाँसने की आवाज़ तो निकालें परन्तु उधर देखें न। जमादार ने कहा, मुफ्ती जी कोई कलाम पढ़ो", मुफ्ती जी आयत करीमा पढ़ने लग पड़े परन्तु सुर थिड़कती हुई निकल रही थी।

अब धरती भूचाल से काँपी, ऊपर से बादलों की गड़-गड़ का शब्द उठा परन्तु मालूम ऐसा पड़ा जैसे ज़मीन के अन्दर से कोई आवाज़ आई है। उन्होंने समझा कि ज़मीन फट चली है। मुफ्ती और सिपाही तो एक दिशा की ओर भागे, परन्तु वस्त्र का पल्लू एक वृक्ष की टहनी से अड़ गया उन्होंने समझा किसी भूत ने पकड़ लिया है चीख कर गिरे। जमादार साहिब ने कई शक्लें देखीं परन्तु फिर

दौड़ते हुए क्या देखते हैं कि कोठरी की आग में से बिजली उठी और कड़क कर आगे चल पड़ी और ऐसे ज़ोर से अपने में टकराती महसूस हुई कि हड़बड़ा कर गिर पड़े, कपड़ों में आग लगी महसूस हुई, असह्य पीड़ा ने व्याकुल कर दिया। फिर क्या देखते हैं कि अज़राइल ने पकड़ कर आग के नरक में डाल दिया है और वहाँ जल रहा हूँ, परन्तु प्राण नहीं मरते।[१]

-कांड १२-

पिछले कांड की वार्ता क्या थी? यह शीला के दृढ़ विश्वास और करतार की भक्तवत्सलता थी। शीला ने तो सिंहों वाला हठ धारण कर लिया था कि करतार के ध्यान में मग्न बैठे रहना है, हिलना तक नहीं और यहाँ ही इसी रंग में प्राणों का त्याग कर देना है, अकाल पुरुष को सदैव से भक्तों की लाज है और युग-युग सदा भक्तों की रक्षा करता है :-

हरि जुग जुग भगत उपाइआ, पैज रखदा आया राम राजे॥
हरणाखसु दुसटु हरि मारया प्रहलादु तराया॥"

योगी लोग भी बताते हैं कि एकाग्र चित्त प्राणी शक्तिशाली हो जाता है और उसकी लीन हुई ध्यान शक्ति बड़े करतब कर देती है। इसी प्रकार शील कौर के वाहिगुरु में लिवलीन ध्यान पर महाराज की कृपा ने उसकी रक्षा की। वह तो मरना तय कर बैठी थी और किसी सहायता की आशा में नहीं थी, सांई में जुड़ी थी कि मरते समय जुड़ी ही मर जाऊँ जिससे मालिक और अन्तरात्मा में कोई दूरी न आये, परन्तु उस भक्तों के प्यारे ने बारिश, अँधेरी, बर्फ

---

१. क्योंकि उनका कीड़ा न मरेगा और उनकी आग न बुझेगी।
(यसअय्याह बा: ६६ आ: २४)

के गोले, बिजली भूचाल सभी डरावनी ताकतें छेड़ दीं। मुसलमान कलामों के बड़े-बड़े प्रभाव आप मानते हैं। बड़े-बड़े आश्चर्यजनक समाचार हैं। वहाँ अत्याचारियों के अत्याचार और ईश्वर के खुद आकर मदद करने के कई समाचार भी आते हैं। उस दिन शाम को जमादार साहिब और सिपाहियों में ऐसे ही ज़िक्र होते रहे थे। ऊपर से शराब मिल गयी थी जो सारे सिपाहियों ने पी थी और ज्यादा पीने वाले ज्यादा बावले हो रहे थे। अँधेरी रात बादल, बारिश, बिजली, अँधड़ और तूफान ने भयप्रद वातावरण बना दिया था, इस सारी दशा को भूचाल ने आकर चौगुना डरावना कर दिया। जब मुफ्ती और जमादार भागे हैं तब वृक्ष के नीचे की ओर दौड़े बिजली कड़क रही थी, बिजली अकसर वृक्षों पर गिर जाती है, यहाँ पर भी कुछ ऐसा संयोग हुआ कि बिजली पड़ी, जमादार, मुफ्ती और दो सिपाही मारे गये। जो अंदर घुसे हुए थे वे डर के मारे हिले ही नहीं, उनको क्या पता कि बाहर जो जल, पवन, बिजली का दंगल हो रहा है, उसमें हमारे जमादार साहिब भी हिस्सा ले रहे हैं।

एक ओर तो शील कौर की पवित्रता और ध्यानमग्नता, ऊपर से ईश्वर जी का प्यार कौतुक कर रहा था, दूसरी ओर बलहीन नशे में धुत दिल भयभीत होकर डर रहे थे, तीसरी ओर बिजली ने सचमुच ही जीव नष्ट किये। जब सुबह कोठरियों में से बाकी सिपाही और कैदी बाहर निकले तो चार आदमी तो बिजली के कारण मरे हुए देखे और एक दो भय से निर्बल से पड़े दिखाई दिये। उन दोनों सिपाहियों ने जो बाहर नहीं निकले थे, उनको रात का हाल कह सुनाया। सिपाहियों का टोला सुनकर हक्का-बक्का रह गया। एक हवलदार को जमादार के स्थान पर मानकर काम आरंभ किया। मुर्दों को दफन किया और अगले क्षण आगे को प्रस्थान किया। शील कौर के सम्बन्ध में उनके हृदयों में सहम बैठ गया। न

तो डरते हुए कुछ कह सकें और न दिल में बहुत रंजिश के कारण उन पर दया ही कर सकें। इस तरह कुछ डर, कुछ वैर से भरे हुए लाहौर तक गये। पहले तो सलाह थी कि सारा हाल कहेंगे, परन्तु बाद में सोचा कि सभी कायर और डरपोक कहेंगे, इसलिए केवल बिजली गिरने का प्रसंग ही कहा गया और अन्य कोई बात नहीं बतायी।

शील कौर ने उस रात का सारा प्रसंग सिपाहियों को आपस में बातें करते सुनकर समझ लिया था। वह अपने दिल में करतार का हज़ार हज़ार शुक्र करती थी कि मुझ जैसी दीन निरभिमानी का सतीत्व और प्राण दोनों बचा लिये। यह सिर्फ दीन दयालु की मेहर है, और मेरा कुछ नहीं।

उधर मीर मन्नू के अत्याचार पंजाब में अब आषाढ़ की दुपहर के सूर्य की तरह शिखर पर पहुँच गये थे, कोई ऐसा शहर, गाँव नहीं था कि जहाँ सिंहों को ठिकाना मिलता। सभी वनों, पहाड़ों में जा घुसे थे। जो हाथ आ गये बुरी तरह मारे गये, अब यहाँ वहाँ से पकड़े हुए कुछ सिक्ख लाहौर पहुँचाये गये कि शरीयत के हुक्म अनुसार मारे जायें।

किसी कौम में से जब धर्म का अंश उड़ जाये तब वे लोग धर्म को एक परदा बना लेते हैं, जिसकी ओट में अनेक तरह के अधर्म कमाते हैं। धर्मात्मा लोगों का बाह्य तो साधारण होता है परन्तु अधर्मियों का बाह्य बहुत चमकीला और धर्म की दमक मारता है। मुगल बादशाह के अंतिम समय पंजाब में अकसर ज़ालिम हाकिम ऐसे थे जो धर्म को केवल अधर्म के निर्वाह के लिए चमक की तरह इस्तेमाल करते थे, ऊपर के काम तो धार्मिकों वाले और अंदर से छुरी फेरने वालों के नमूनों के होते थे। खुशामदी और पेटपूजक

जो बाहर से धर्मात्मा और अंदर से केवल अपने धर्म के उन आदेशों को मानने वाले, जिनसे अपनी इच्छाएँ पूरी हों, चाहे अत्याचार और झगड़ा फैले मीर मन्नू के साथ मिलकर एक मैदान में नमाज़ पढ़ने के लिए खड़े हुए। नमाज पढ़कर चाहिए था कि जैसे परमेश्वर से अपने लिए दया माँगी थी वैसे औरों के लिए भी दया माँगते परन्तु कहाँ से? नमाज जीभ पर थी, अत्याचार दिल में था, ईश्वर तक कैसे पहुँच होती। चाहे दिखावे-मात्र के लिए तो ईश्वर के साथ ही बातें करके हटे थे और उसके पवित्र आदेशानुसार पुण्य करने लगे प्रतीत होते थे और प्रसन्न हो रहे थे कि काफिरों को दुख देने लगे हैं परन्तु असली धर्म की गति न्यारी है।

एक खुले मैदान में करीब बीस शूरवीर सिंह, गुरु गोबिन्द सिंह जी के बहादुर, पिंजरे में कैद शेरों की तरह हाथ-पैर बंधे पंक्ति में खड़े किए गये। एक लम्बी सफेद दाढ़ी वाले धार्मिक साहिब जो अपने ख्याल में शायद तरस वाले ही होंगे, बहुत सुरीले सुर में उपदेश देकर उनको मुसलमान बनने के लिए प्रेरित करने लगे। परन्तु समुद्र में खड़ी चट्टान की तरह इनके मीठे वचन रूपी लहरों और धमकियों रूपी तूफानों द्वारा सिक्खों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे हीरा कीचड़, मिट्टी, गंदगी में कहीं फेंका जाये हीरा ही रहता है, वैसे ही सच्चे सिंह चाहे किसी संगति, सोहबत, दबाव में चले जायें सदा सिंह हैं। जब धर्म छोड़ने के सम्बन्ध में दिए उपदेशों का कोई वश नहीं चला तब मन्नू ने आँख द्वारा एक कर्मचारी को कुछ इशारा किया, उसी समय तीन चार आदमी ऐसे आ खड़े हुए, जैसे रात ने रूप धारण कर लिया हो अथवा मानो सूर्य के ढक्कन हों। काली आँधी के साथ जैसे कभी-कभी सफेद बादल आ जाते हैं, वैसे सफेद-सफेद रुई के बोरे और तेल के मटके लाये गये और उन जल्लादों ने सिंहों के बदनों पर रुई ऐसे बाँध दी जैसे पूरब के

वासी होलियों में हनुमान बनाया करते हैं। अब सिंहों के पैरों और हाथों को शृङ्खलाएँ डाल कर दूर-दूर खूँटों से ऐसे कस दिया कि हिलने लायक न रहें, फिर उनको तेल से तर किया, जैसे दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ाने से पहले तेल चढ़ाते हैं। सफेद रुई तेल द्वारा पीली होकर कृष्ण जी के पीले वस्त्रों की तरह गुरु के दुलारों को सच्चे दूल्हे के रूप में ले आई। धरती रूपी घोड़ी पर सवारी करने को मिली, सेहरों के स्थान पर शृङ्खलाएँ बाँधी गई। कैसी अद्भुत बारात बनी है? गीत इस समय कौन गाये? घोड़ियाँ[१] कौन पढ़े? खालसा जी आप ही शबद गाने लग पड़े–

'तेरा कीआ मीठा लागै॥ हरिनामु पदारथु नानक माँगै॥'

यह देखकर तमाशा देखने वाले हक्के बक्के रह गये, वे सोचते थे कि ये लोग इस भयानक मौत का सामना करने से डर कर शरण माँगेंगे, परन्तु नहीं जानते थे कि ये गुरु गोबिन्द सिंह जी के शूरवीर हैं, भय कौन खाये? और कौन शरण माँगे।

खालसा जी! क्या आपके हृदय में अपने पूर्वजों की इस निडर बहादुरी और निश्चय की ओर देखकर कुछ प्रेम नहीं पैदा होता? क्या बेपरवाही रूपी दलदल द्वारा दबे हुए आँसुओं के कुँए की वलगन (घेरा) फटकर आँखों के रास्ते प्रवाह नहीं चलता? देखो ये बहादुर जो कि धैर्य और निश्चय में सराबोर हुए पतिव्रता स्त्री की तरह सत्य के साथ सती होने के लिए तैयार थे, कैसे पक्के सिंह हैं, घर बार दौलत सबको छोड़कर मौतें कबूल रहे हैं। इनका इस बहादुरी से प्राण देना बाकी के सारे पंथ के लिए हौंसले का कारण बनता था और सारे जीवित भाइयों के हौंसले को अधिक पक्का कर के धर्महित सिर देने के लिए और अधिक तैयार करता था। इन कभी पीठ न देने वाले हठी सिंहों के जोश ने भारतवर्ष को मुगलों के अंतिम जुल्म राज्य से छुटकारा दिलाया। धन्य थे ये सिंह बहादुर! सताये जाते, परन्तु और मजबूत होते थे। काटे जाते थे पर

१. शगुन के गीत।

और बढ़ते जाते थे। ख़त्म किये जाते थे परन्तु ख़त्म नहीं होते थे। मौत इन पर अमृत का असर करती थी। तलवार की तेज धार पर खेलना इनके लिए आब-ए-हयात का पीना होता था। जैसे जैसे परेशान और दुखी किये जाते थे वे नर शेर की तरह वैसे वैसे ही गुस्से में आते जाते थे। आत्म विद्या के कथनानुसार मौत इनके लिए नया जन्म होती थी।

अब देखिए सिंहों के साथ क्या बीतती है। आग लाई गयी, पहले जो कुछ, सिंहों के चारों ओर लकड़ियाँ, तिनके और पत्ते आदि इकट्ठे किए गए थे उनमें कुछ-कुछ दूरी पर आग रखी गयी। चारों ओर से बहुत तीखा धुआँ उठा, जिससे घबरा कर इनके शरण मान लेने की आशा थी। धुआँ पहले चढ़े तो सिर चकराता और विह्वलता तथा बेसुधी पैदा करता है[१] सिंहों के मुँह से इस शुरू में घबराने के समय सब से पहले वाहिगुरु की ध्वनि निकली। शोक! उस भेद को कौन समझे जो गुरु ने इनके हृदय में डाल दिया है? इस चढ़ती घबराहट ने भी सिंहों के विश्वास को डगमगाने नहीं दिया। थोड़ी देर तक होश रही, 'वाहिगुरु' की ध्वनि भरी आवाज़ निकलती रही, फिर चुप हो गयी[२], धीरे-धीरे आग मच उठी और सारे में फैल गयी।

---

१. आग के धुएँ में एक ज़हर होता है जो बेहोश कर देता है और बेहोशी में ही मार देता है।

२. यह समाचार एक पुरातन सिक्ख कहा करता था जिसकी मृत्यु हुए चार वर्ष (१९०० में) हो गए हैं। यह तरनतारन में रहता था। ख़ान बहादुर के समय की एक घटना का वर्णन भंगू जी ने भी किया है—जिसमें किसी कंदरा में रहते सिक्खों को, कंदरा के मुँह में लकड़ी, तिनके आदि भरकर, आग लगा देने की कोशिश की गई थी। (देखें पृष्ठ २६०-६२)

सिंहों को डराने और मारने के कई ढंग उन दिनों प्रयोग में लाये जाते थे, जैसे कि—गुरबिलास, भाई मनी सिंह (अध्याय २१) में ऐसे लिखा है :—

लुष्ट चरखन साथ बंधे सिंह ऐस उपाय सौं ताहि डराये।।
ऐसे उपाय सु पाप के नित करे तुरक सुजावहीं।।

(शेष देखें पृष्ठ ८५ पर)

लो अग्नि देवता! जो जी में आये सो कर लो, जितने हमले करने हैं करो और कूद-कूद कर पवित्र शरीरों को जलाओ, दाँत किटकिटा कर क्रोधित होते हुए धर्म के हितैषियों की देह को धोओ, परन्तु अब तुम्हारा कुछ वश नहीं चलेगा। वह वस्तु तो शरीरों में से सही सलामत निकल गयी है जिसके लिए तुम से आज जल्लादों वाला काम लिया गया। वह पदार्थ उड़ गया जिसके लिए तुमने निर्दोषों को दबोचा, वह सूक्ष्म अजर अमर 'अग्नि और जल के प्रभाव से अछूती रहने वाली' आत्मा सच्चे पिता के चरणों में पहुँच चुकी है। आखिरकार आग हार गयी, मद्धम पड़ गयी, किये पर मानो पछतायी, एकदम पीली हो गयी। अंत में ऐसी सिर में राख पड़ी कि हड्डियों के ढेर पर राख का ढेर हो कर बैठ गयी और अंधेरी के झोंकों के साथ अपने सिर आप उड़-उड़कर पड़ने लगी।

(पृष्ठ ८४ का शेष)

जाहि धरम सु गुरु राखै सो क्यों चीत डुलावहीं।।
इक शिला तरे अपार तीखन, इक गरे तंती पावहीं।।
ऊपर जा कै जा त्यागें तरे सीस तुरावही।।१५५।।
तब सिंहन सब ही मरवायो।। कई एक सूली कर हन दये।।
कई चरखड़ी बीच सुभए। जपत अकाल बिनस सब गये।।१६०।।

इसी तरह अमीर दास लिखता है--

सिक्ख थोड़े और तुरक बहुते।। तुरक मारन मरन सिक्खां को पकड़ ले जावनि।। छट्टां मैं सीवन।। चरखियाँ चड़ावैं, सूलियाँ और फाहे देवहि, अंग जुदा करहिं।। संगतां को मारहिं, खोस लै जावहि।। बहुत सिक्खाँ दे नेत्र कढाए डारे।। माझे मै तुरकां की फौज घर-घर सिक्खां को ढूँढती फिरै। हलकारे बन मैं सिक्खां को ढूँढते फिरैं।। जो सिक्ख हाथ आवै तिस को मार डारैं।। पचास रुपये सिक्ख के सीस का इनाम मिलै। राम दास पुरे के घरां ते तुरकां ने आग लगाय दीनी। (श्री गुरबंस चन्द्रोदय)

-कांड १३-

लखपत का बल उड़ जाने के बाद जब दीवान कौड़ा मल्ल ने सिंहों की और मीर मन्नू की सुलह करवा दी थी तब इलाका पट्टी जागीर में दे दिया था जिससे खालसा जी तीन साल कुछ सुखी रहे और बढ़े थे। १८०८ में अहमदशाह फिर पंजाब पर चढ़ आया। तब तीस हज़ार खालसा मन्नू की सहायता के लिए आया और दुर्रानी के साथ कई महीने तक लड़ता रहा था। जंग में दीवान कौड़ा मल्ल जी शहीद हो गए और दुर्रानी मीर मन्नू को अपना नायब लाहौर का सूबा-स्थापित कर १८०९ में कंधार चला गया। अब सिक्खों के साथ किए सारे वायदे तोड़ कर अचानक मीर मन्नू सिक्खों के पीछे गया था। बाबे बंदे[1] के बाद लड़ने वाले सिक्खों का व्यवहार यह था कि वे शादी नहीं करते थे, इनको उन दिनों भुजंगी कहते थे। ऐसे भुजंगी तो तुरन्त वनों, घने काननों की ओर चले गए परन्तु जिन्होंने विवाह कर लिये थे तथा अन्य परिवारों वाले सिंह बहुत पकड़े गए और लाहौर पशुमंडी में ले जाकर भाँति भाँति के तरीकों द्वारा मारे गये, जिनके कुछ वर्णन ऊपर देते आ रहे हैं, परन्तु मीर मन्नू को खालसे के दोषी, द्रोह करने वालों ने अब बुरी सीख सिंहों के परिवारों को पकड़ने और दुख देने की सिखायी, जिससे अब परिवारों पर कष्ट टूट पड़े और सिंहों की स्त्रियाँ भी उस समय के अत्याचारों से नहीं बची।[2] एक टोली सिंहनियों की तुर्कों के शिकंजे में फँस गयी, जिसे मीर मन्नू के आदेशानुसार उस जगह मसजिद के नजदीक कैद किया गया था जहाँ भाई तारू सिंह

१. बाबा बंदा सिंह बहादुर।

२. गोकुलचंद नारंग 'सिक्खों के परिवर्तन' पृष्ठ ७१ पर बाबे बंदे के बाद के समय सिक्खों के कष्टों का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

'उनकी स्त्रियाँ और उनके बालक पकड़ लिए जाते थे और उन्हें कष्ट देकर मारा जाता था।'

जी शहीद हुए थे और भी औरतें जगह-जगह से पकड़ कर लायी हुई यहाँ लाकर कैद की गयीं। इस टोली में हमारी शीला और भुजंगी जो हाकिम ने पीर से डरते हुए लाहौर भेजे थे, दाख़िल किए गये। ये औरतें अधपकी वहमी, भ्रम में डूबी, डर की पुतलियाँ, गुरमत के विरुद्ध काम करने वाली मनमती तथा गुरु से बेखबर नहीं थीं। इनके हृदय में धर्म का पूर्ण प्रभाव था। ये एक परमेश्वर के अलावा किसी पर निश्चय नहीं रखती थीं। सिवाय परमेश्वर से प्यार करने के, किसी फोकट कर्म में नहीं लगती थीं। इनके लिए यह ध र्म सच्ची खुशी का कारण था। ये सांसारिक सुखों के लिए धर्म से मुँह मोड़ने का स्वप्न में भी ध्यान नहीं करती थीं। ये वे माताएँ नहीं थीं जो पुत्र प्राप्त करने के लिए मड़ियों, श्मशानों, जादुओं के पीछे घूमें। ये वे माताएँ थीं जो पुत्रों को कमरकसा करवाकर युद्धों में भेजा करती थीं। ये वे पत्नियाँ नहीं थीं जो फैशन के पीछे लगकर अपने आप को शृंगार में धकेल कर खिलौनों जैसी सजावट को अपना जीवन बना लें, बल्कि ये वे पत्नियाँ थीं जो चोट खाकर भागे हुए जीवित पति को देखने के स्थान पर बहादुरी में शहीद हुए को देखकर खुश होती थीं और युद्ध के लिए प्रस्थान करने पर कहा करती थीं :-

बीरा[१]! रण में जायकै लोहा करो निशंक[२]।
ना मुहि चढ़े रंडेपड़ा ना तुहि लग्गे कलंक।

ये वे बहनें थीं जो वीरों को (भाइयों को) रणभूमि में भेजकर आशीर्वाद देती थीं :

'वीर! चले हो रण विखे, सन्मुख जंग जुड़ो।
सिर देवो जां सिर लवो, पिठ दे नाहि मुड़ो।'

---

१. बीरा-हे बहादुर पति।
२. लोहा करना - वह बहादुरी कि आप मर जाये अथवा मार ले।

ये वे बेटियाँ थीं, जो पिता की शहीदी की ख़बर सुनकर कहा करती थीं–

'अमर भए हुण पिता जी जनम न मरन कदी।

मैं न महिट्टर[१] बनां हुण, बापू! जुग जुग जी।'

अब भगवान की ऐसी मर्जी हुई कि बेचारी सिंहनियाँ आप फँस गयीं, निश्चय और परीक्षा का समय आ गया। जो कहा करती थीं आप करके दिखाना पड़ा[२]।

पहले तो पतियों के बिछोड़ों का दुख, ऊपर से अत्याचारियों की कैद भुगतनी पड़ी। कई दिन किसी ने बात नहीं पूछी। आठों पहर चने की रोटी और कटोरा पानी का मिले, न नहाना, न धोना, न हँसना, न खेलना, न कोई सफाई, न सुख; नरक के वासियों जैसी मैली दशा हो गई। अज्ञानी (नादान) बालक भूख के मारे रोयें, परन्तु वाह सिंहनियों के आपसी प्यार! जिनकी गोद में बाल नहीं थे, वे चप्पा चप्पा रोटी कम खातीं और वे टुकड़े बालकों वालियों को

१. यतीम, माँ बाप से रहित।

२. सिंहनियों के कष्टों के ये हाल पंथ प्रकाश ज्ञानी ज्ञान सिंह कृत, टाइप छपाई, पृष्ठ ७०९ में हैं।

भाई गंडा सिंह कृत गुरुद्वारा शहीद गंज (अंग्रेज़ी) के पृष्ठ ३०-३१ पर भी संक्षिप्त हाल सिंहनियों के इस साके (कोई ऐसा कर्म जो इतिहास में प्रसिद्ध होने लायक हो) का दिया है।

इस साके के घटित होने से पहले अब्दुल समद्द खाँ के समय भी सिंहों की सिंहनियों और बच्चों पर कहर व्याप्त हुए थे। गोकुल चंद नारंग अपने 'सिक्खों के परिवर्तन' के पृष्ठ १८९ पर लिखते हैं '(सिक्ख) स्त्रियों तक का बंदी किया जाना, उन्हें कष्ट दिया जाना तथा मार डाला जाना उन दिनों की कोई असामान्य घटना न थी।'

पंथ प्रकाश में ज्ञानी ज्ञान सिंह जी इस साके के बाद संवत् १८८६ के लगभग पट्टी में सिंहनियों को बहुत सारे कष्ट दिए जाने का एक और साका घटित हुआ भी लिखते हैं।

(देखें पृष्ठ ७६४ टाइप छपाई)

अथवा बालकों को खिला देतीं और उस कष्ट को आपस में बाँट कर भोगतीं। वाणी का पाठ करतीं, गुरु परमेश्वर का ध्यान करतीं, इस प्रकार दुख के दिन काटतीं। अब मीर मन्नू ने आदेश दिया कि 'सब को तुर्क बनाओ, जो न माने उसको सवा मन[१] दाने देकर चक्की पीसने पर लगाओ, जो न पीसे उसे कोड़े मारो। यह आदेश सभी जगह सुनाया गया। अब बेचारियों के आगे चक्कियाँ लगाई गईं और दाने रखे गये। करतार की मर्जी सिर माथे स्वीकार कर अरदास करने के बाद सिर पड़ी बिपदा को झेलने के लिए तैयार हो गयीं। जिनके बच्चे नहीं थे और गाँवों की थीं वे तो दिन चढ़ने तक तंगी सह सहाकर पीसने के लिए मिला अनाज़ पीस चुकीं, पर हाय! शहरों और अमीर परिवारों की सिंहनियों के लिए यह बहुत मुश्किल था। ये बेचारी चक्की पीसती हैं, वाणी पढ़ती हैं, गुरु गोबिन्द सिंह जी के कष्टों को सोचती हैं, गुरु तेग बहादर जी, गुरु अर्जन देव जी के असह्य दुखों के नक्शे आँखों के आगे लाकर अपने दुखों को सुख समझकर सिर पड़ी को बिताती हैं, परन्तु हाय कठोर की बेगार! हाथों में छाले, बाँहों में गाँठें पड़ रही हैं, मन-मन की बाजू हो रही है, मानो सारे शरीर का रक्त इनमें आ घुसा है। कमर थककर शरीर का बोझा उठाने से इंकार कर रही है। कोमल शील कौर की ओर देखो, राज घर में पली, नौकरानियाँ जिसके आगे हाथ बाँधकर खड़ी रहती थीं, धर्म के कारण किस आपदा के मुँह में आ गयी है। गोरी-गोरी बाँहें लाल हो गयी है, चेहरा मुरझा गया। प्यारा लाल (पुत्र) माँ के हाथ पकड़ कर मिन्नत करता है, 'अम्मां जी! आप पलभर के लिए साँस ले लें, मैं चक्की घुमाता हूँ।' माँ, ममता की मारी माँ, इतना कठोर काम पुत्र को कैसे दे? शरीर भी थक कर

---

१. सवा मन कच्चे जो २० सेर पक्के के लगभग होते हैं।

चूर हो गया है, पुत्र भी पीछा नहीं छोड़ता, हार कर हाथ उठा लेती है। गुलाब जैसा बालक माँ के दुख बँटाता है, परन्तु हाँफ हाँफ जाता है। इस विपदा में इन गुरु की प्यारी सिंहनियों का हाल देखने सुनने का बड़ा फर्क है। जो औरत सशक्त है और अपनी विपदा पूरी कर चुकी है, वह चाहे कितनी थक गयी हो किसी निर्बल को दुखी देखकर उसका हाथ बँटा रही है, कहीं दो-दो लग रही हैं। एक धम्मो नाम की मज़बूत सिंहनी ने शीला को देखा तो रोकर बोली, 'प्यारी! तुम तो सुन्दरी जैसी प्रतीत होती हो, हाय! उस धर्म की मूर्ति ने भी बहुत दुख पायें थे परन्तु अन्त तक कभी नहीं डगमगायी थी। उसने कुछ देर हुई शरीर त्यागा है।' शील कौर का एक तो इसने हाथ बँटाया, साथ में सुन्दरी की कथा सुनायी[१]। इस प्रकार सिंहनियों ने अपनी तकलीफों से फुर्सत पाकर करतार के आगे अरदास की :-'हे अकाल पुरुष स्वामी! हमें विश्वास दो, चाहे हम शरीरों से अबलाएँ हैं परन्तु मन हमारे आपने बलवान कर दिए हैं और पवित्र सत्य धर्म बख्शा है। तुम बिरद की लाज रखना। हम अत्याचार/कष्ट भोगें, परन्तु धर्म न हारें, टुकड़े टुकड़े काटी जायें परन्तु मनी सिंह की तरह विश्वास से मुँह न मोड़ें। तुम सत्य और प्रेम हो, तुम्हारे बल द्वारा तुम्हारे नाम पर बलिहार हो जायें। प्राण वार दें, परन्तु अपने इष्ट से मुँह न मोड़ें। सभी कुछ चला जाये हे करतार! शील और धर्म न जाये। तलवारों के जौहर बेशक चखने पड़ जायें परन्तु काँच के बदले झूठ न खरीदें।' ऐसी विनती कर कर कष्टों को बितातीं। कभी तुर्क आकर कुछ भरमाने का यत्न करते अथवा धमकाते और धौंस देते, तब शेर की तरह भभककर

१. यह पुस्तक अलग से छपी हुई है, जो खालसा समाचार अमृतसर के दफ्तर से मिलती है।

सिंहनियाँ उत्तर देतीं। इस तरह एक दिन परीक्षा लेने के लिए एक समय खाना भी बंद कर दिया गया। कठिन मेहनत करतीं, कैद भोगतीं, ऊपर से रोटी भी न मिलती।

जिन्होंने चार-चार बार पेट भर खाना खाया हो और हाज़मे के चूर्ण और सोडा वाटर के साथ मिठाइयों को पचाया हो, उनको इन पीड़ाओं का हाल क्या मालूम? जिन्होंने व्रत रख रखकर भी फलाहार और पेडों की टोकरियों और शर्बतों के मटकों पर हाथ फेरे हों वे मुश्किलों और भूख को क्या जानें? हाँ जिन्होंने भूख के दुख देखे हैं वे रो-रोकर यह कहते हैं-'बाबा! मौत से भूख बुरी।'

एक दिन सिंहनियों को चाबुक भी मरवाये गये। श्री गुरु ग्रंथ साहिब से शिक्षा प्राप्त कर सत्य पर दृढ़ हुई इन स्त्रियों ने शारीरिक कष्टों को झेला। उन्होंने धर्म को अपने दुखी शरीर के अन्दर .बसे कष्टातुर मन से भी अंदर के आत्म के डिब्बे में संभालकर रखा हुआ था, कौन वहाँ से उस लाल को हिलाता?

इन जल्लाद स्त्रियों में से एक शील कौर के मायके से थी। उसको शील कौर के पिता का हाल मालूम था कि तारा सिंह वा के साथ वह किस बहादुरी के साथ शहीद हुआ था[१] और केवल एक बेटी छोड़ गया था, जिसको उसके चाचा ने एक मुकद्दमा जीतने के उद्देश्य से चूहड़ मल्ल के पुत्र के साथ ब्याह दिया था। आज उसको सिंहनियों में कष्ट सहती देखकर रह न सकी और बोल उठी :-

'पिता पर पूत जात पुर घोड़ा। बहुता नहीं तां थोड़ा थोड़ा।

बच्ची! तुम कहाँ चूहड़ मल्ल जैसे के घर रहने के लायक थीं। तुमने तो पति को भी सिक्ख बनाकर शहीद करवा दिया होगा। तुम्हारी माँ भी कष्ट सहकर चढ़ी थी, तुम भी माँ बाप की तरह आ फँसी। सिंह की औलाद चाहे कहीं चली जाये, अपने जौहर ज़रूर दिखाती है।'

---

१. आप १७८२-८३ के लगभग शहीद हुए थे।

चाहे यह सख्ती करने आई थी परन्तु इंसान का दिल आखिर दिल है, यह स्त्री शीला पर तरस खाकर चूहड़ मल्ल के घर पहुँची और शीला की सास को सारा हाल कह आयी। वह दुखियारी पहले ही गमों में डूबी रहती थी, और भी सोच-विचार में गर्क हो गयी। परन्तु औरत बुद्धि वाली थी, इस बलशालिनी को रुपये देकर बोली कि किसी तरह मेरी बहू और पोते को निकालकर मेरे पास पहुँचा दो। इस चालाक औरत ने लालच में आकर उन दोनों को निकालने के यत्न किए, परन्तु वश कोई न चला।

मीर मन्नू सिंहनियों के हठ से आश्चर्यचकित होकर एक दिन आप वहाँ पहुँचा और उनको धर्म छोड़ने के लिए प्रेरित करवाया। परन्तु उन्होंने इनकार में उत्तर दिए :-

सिंहणीआं को कहयो, मन्नू : तुम दीन कबूलो।

मन वांछत सुख भुगो बैठीआँ पलणे झूलो।

सुण सिंहणीआँ कहयो, दीन हम साचा लीओ। हेत तारने सुत अकाल ने हम को दीयो। और मज़हब हैं जितक सभी बंदयो ने कीये। रच बनावटी कूर प्रभु ते बेमुख थीए। गुरमत सचा लाल छोड़ कच क्यों गहि थारा? बेईमान बन जीयें कहा कब लौ संसारा? रोग, सोग, भुख, दुख, काल कर्मन का लेखो। भोगन पड़ है सरब मज़हब मैं इक सम देखो।।१६।।

(पंथ प्रकाश भाई ज्ञान सिंह, निवास ८२)

यह उत्तर सुनकर मीर मन्नू आग-बबूला हो गया और अत्यधिक क्रोधित होकर बोला : 'इन काफिरों के प्राण और दीन जब देखे मज़बूत ही देखे।'

बात क्या अब अत्याचारी मन्नू के क्रोध से भड़के हृदय ने आदेश दिया। पाँच सात सवार निकल आए, सिपाही घेरा डालकर

खड़े हो गए। माताओं की गोदियों से छोटे-छोटे पुत्रों को छीनकर उछालते हुए गेंद की तरह आसमान की ओर फेंकते हैं, नीचे की ओर आने पर भाला ऊँचा करते हुए उसमें पिरो लेते हैं जिससे वे अत्यधिक कराह-कराह कर और तड़प-तड़प कर प्राण त्याग देते हैं।

सिंहणीआं के बच्चे लै के। उन के सन्मुख उन्हें दिखै के।
ऊपर को उछाल कट्ट सुट्ट हैं; कर अति जुलम जड़ा निज पुट हैं।
बुरछियाँ माहि अनेक पुरोये। शीरखोर[1] तड़पा इम कोहे।

(पंथ प्रकाश, पृष्ठ ७१०)

माताएँ! हाय पुत्रों की प्यारी माताएँ, अपने बच्चों की डरावनी मौत की ओर, मुश्कों में कसी हुई बैठी किस बेबसी से देख रही हैं। इतने कठोर दुख को देखकर पानी भी आँखों में पत्थर हो जाता है, परन्तु बहादुर सिंहनियाँ देखती हैं और कहती हैं : वाहिगुरु! तुम्हारी गोद सदा हरी, सदा हरी गोद में ले लो अपने बाल।"

जब शील कौर के दुलारे की बारी आयी, तब मीर मन्नू उसकी सुन्दर सूरत देखकर ऐसे चकित होकर ठिठका कि जैसे आग का भभूका ठंडे जल के पड़ने से ठंडा हो जाता है। वो बलशालिनी भी रिश्वत खाकर, जिसका वर्णन पीछे किया गया है, उनके बचाव में तैयार हुई कई यत्न करती रही थी और अब तक बचायी रखा था: परन्तु शोक! ज़ालिम की तीखी नज़र से सौंदर्य में चमकते धर्मियों को छलते पतले पर्दे द्वारा ढक न सकी। देखें मन्नू इनके साथ क्या करता है? क्या इसके अंदर सिक्खों के साथ सख्ती करते-करते सख्ती के पदार्थ भर गए हैं, और सारे अवगुणों में बदल गए हैं। दया, तरस, हमदर्दी, ज़ीव रक्षा कोई उस अपाहिज हृदय में बाकी नहीं जो हमारी दुखियारी शील के लिए सिफारिश करे? परन्तु

१. दूध पीते बच्चे।

समझदार लोग कहते हैं कि किसी समय बुरे कारणों से भी अच्छे काम निकल जाते हैं, जो करने वाले की नीयत में नहीं होते। शीला की सुन्दरता को देखकर क्रोधातुर हृदय में बुरी वासना उपजी और सिंहनी को बेग़म बनाने का शौक पैदा हुआ, तुरन्त हुक्म दिया कि इसको बच्चे सहित महलों में भेज दो।

वज़ीर–हुज़ूर! इतनी सख्ती इनके साथ की, पुत्र मारे, किसी ने दीन कबूल नहीं किया, यह कैसे कबूल (स्वीकार) करेगी?

मन्नू–तुझे क्या ख़बर, ये औरतें तू जानता है कि अपना दीन छोड़ने से बच रहेंगी। मैं तो केवल यह चाहता था कि ये अपने मुँह से आप ही कह दें। थोड़े दिन और सूलें चुभाऊँगा, अगर फिर भी हठ रहा, तब जबर्दस्ती नीचे गिरा कर जूठा पानी मुँह में डालकर मुसलमानों से विवाह कर दूँगा, परन्तु इस चाँद बीबी के साथ आज ही यह व्यवहार होगा। इसको महलों में दाखिल किया जायेगा।

अच्छा अब चलो इन औरतों के बच्चों के टुकड़े इनकी झोलियों में डालो और रात भर भूखे रखो, फिर मुझे खबर पहुँचाओ।[१]

-कांड १४-

शील कौर और भुजंगी पीठ पर बंधे हाथों सहित महलों में पहुँचे। बादशाही सजावट वाले मकान में रुकना मिला। हाथ मुक्त

१. हिस्टोरियन भाई कर्म सिंह जी ने अपनी खोज के बाद संवत् १९८५ बि० में इस साके के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें छापी थीं :–

मीर मन्नू ने सिंहनियों को अत्यधिक कष्ट दिए, उनसे चक्कियाँ पिसवायीं, परिश्रम करवाये, हर भय दिए गये, लालच दिये, परन्तु वे धर्म से नहीं डगमगायीं तो उनकी झोलियों में से उनके बच्चे छीनकर उनकी आँखों के सामने भयानक कष्ट देकर मारे और फिर उनकी झोलियों में ही डालकर मेहनत करवाते रहे। कभी-कभी सिंहनियों को शहीद भी किया जाता। मुगल हुकूमत की ओर से यह अत्यधिक घिनौना कहर था। परन्तु शुक्र है कि बदले की आग में जलते हुए भी किसी सिंह ने कभी किसी समय स्त्री पर हाथ नहीं उठाया।

(फु० पृष्ठ ३९५)

किए गए, नौकरानियाँ, सेविकाएँ आ उपस्थित हुईं, सुख भोगने के सभी साजो-सामान मौजूद हो गए। रेशमी पोशाकें हाज़िर हुईं, गहनों के डिब्बे आगे रखे गए। कई समझदार औरतें समझाने के लिए आईं कि अब जिद्द छोड़कर पंजाब की महारानी बनिये, अटक से लेकर सतलुज तक आपका सिक्का चले और आपके नाम से देश थर-थर काँपे। शील कौर ऐसे सिर झुकाए दिल में काँटों की चुभन जैसे कष्ट भोगती बैठी है जैसे बेरियों के बीच में चमेली होती है जिसके अंदर बेरियों के काँटे गिर-गिर कर इकट्ठे हो जाते हैं और चीर डाल देते हैं ऊपर से बाग का माली सारे काँटे आदि तो उठा देता है परन्तु अंदर बिंधे काँटों को नहीं निकाल सकता।

बिना बुलायी सहेलियाँ समझाती हैं, वह शर्माती है। न बुलायी सखियाँ शिक्षा देती हैं, वह टप-टप आँसू बहाती है; ज़ोर-जबर्दस्ती करने के लिए बुलायी गयी औरतें लालच और ऐश्वर्य के नक्शे बाँधकर भुलावा देती हैं, शीला का दुख हिचकोले बन बन उसका गला घोटने को पड़ता है कि मार ही दूँ। विपदा ने शीला को नहीं घबराने दिया, आपदा ने नहीं डगमगाने दिया, यातनाओं ने हौंसला नहीं हारने दिया, कष्टों ने दिल को नहीं छोड़ने दिया, परन्तु इस ऐश्वर्य धन दौलत ने इस खुशामद और अमीरी ने, हाथ बाँध कर सामने खड़े होना है, इस महारानी बनने की प्रेरणा ने घबरा दिया है। हाँ, परन्तु डुलाया नहीं, भयभीत अधिक किया है परन्तु इस भय ने इस नये आ बने समय का अधिक बलवान होकर मुकाबला करने का हठ पैदा कर दिया है। पहले तो पैरों के नीचे से मिट्टी निकलती जा रही थी, सिर में से दिमाग को चलाने वाली सूक्ष्म परन्तु बलवान सत्ता लुप्त हो रही थी। निराशा और नाउम्मीद इस तरह शरीर को खाली करती जा रही दिखायी देती थी कि जैसे देह को आत्मा छोड़कर सूना कर जाती है। यह नहीं कि शीला पर

लालच असर कर गया था, कभी नहीं शीला इस गहरी सोच में पड़ते ही निराशा में डूब गयी थी कि हाय! शत्रुओं के जुल्मों का असर तो शारीरिक मौत हुआ करता है, जो व्यक्ति बर्दाश्त कर लेता है परन्तु शत्रु का प्यार मन के लिए विष है। हाँ जी शीला शस्त्रों से नहीं डरी, शीला वैरियों के तोपखाने से नहीं काँपी। शीला उनके प्यार से भी विचलित नहीं हुई परन्तु काँपी है चिन्ताओं के कुएँ में उतर गयी है और सोच रही है बचाव की। शीला उनकी दयादृष्टि से बचने के उपाय ढूँढ रही है, उनके मीठे व्यवहार को मीठी छुरी–आत्मा को घायल करने वाली जानकर उस अभ्यासी की तरह सोच में गुम होती जा रही है जो 'ओऽम' को लम्बा कर उच्चारण करता और श्वास को चित्तवृत्ति में पिरोकर चढ़ाता 'म' पर पहुँच कर ऐसे गुम हो जाता है जिस प्रकार गोताखोर नए कुएँ का गारा निकालता 'अहोम' की आवाज़ देकर डुबकी लगा जाता है। कभी तो मालूम होता था कि मैं जीवित हूँ। कभी निराशा में बेसुध हो जाती थी, मानों उसके मन से संकल्पों विकल्पों की सारी लिखाई धोयी जाकर कोरे कागज़ की तरह, खाली ही दिखायी देती थी।

आजकल के सिंह–सिंहनियों को शीला की इस दशा से शिक्षा लेनी चाहिए। तुर्कों के वैर से सिक्खों का उस समय कुछ नहीं बिगड़ा, परन्तु अब आजकल और तरह के धर्म आए हैं, जो मधुरता द्वारा, लोभ द्वारा धर्महीन करने की कोशिश कर रहे हैं। इन से डरो, ये बुरा प्रभाव डालते हैं। उनके प्यार से न भूलो, उनके तोहफे, उनके मीठे वचन, उनके आदर तुम्हें खा जायेंगे। सत्यवती शीला ने सौ वर्ष से भी पहले जो सोचा और समझा था वह आज सारे पंथ के लिए गुणकारी है। उस सच्ची सिंहनी के पदचिह्नों पर धर्म की वर्तनी सीखो और धर्म में पक्के रहो, लालच,

प्यार, धोखा, मार आप पर किसी प्रकार का धर्म क्षीण करने का कोई असर न करे।[१]

प्यारी सिंहनियों! और दुखी विधवा सिंह स्त्रियो! और बहादुर पतियों की पत्नियों! इस संसार में (जो छल और दगा से पूरित है) आपको बहुत संभलकर चलना चाहिए। सुन्दरी और अन्य पुस्तकें पढ़कर आप कष्टों में धर्म बचाने का हौंसला करना तो सीखोगी ही परन्तु मीठी छुरियों से बचना भी सीख लेना चाहिए। यह मानव जन्म बहुत दुर्लभ है, इसमें धर्म को बचाना ही हमारा बड़ा काम है। हे नरम चित्त वाली बीबियो! ठग पुरुष सुन्दर सूरतें बनाकर कई प्रकार के दाँव पेंच खेलते हैं, मीठे बनकर आदर देकर विपदा में सहायता कर-कर धर्म से गिराने का यत्न करते हैं, परन्तु शील कौर की ओर देखकर आप धर्म में पक्के रहने का यत्न करना। यह न समझना कि सिर्फ पाखण्डी लोग और अनजान ये यत्न करते हैं; नज़दीक के रिश्तेदार, हाथों में खिलाए, घर के लागी (गृहस्थियों के आसरे लगकर गुज़ारा करने वाले ब्राह्मण, नाई आदि), घर के नौकर चाकर और नज़दीक के सम्बन्धी ऐसे रंग खेलते हैं। परन्तु ख़बरदार! इस कलियुग में किसी बात पर भी धर्म नहीं हारना। सांसारिक सुख क्षणभंगुर हैं, सांसारिक सुखों का अन्त कड़वा है, संसार के आनन्द भोगने से क्लेश होता है, परन्तु धर्म लोक-परलोक के सुख देने वाला है, इसलिए धर्म का पालन करो, धर्म की खुशियाँ भोगो, धर्म का सुख प्राप्त करो! अधर्म चाहे दुश्मन बनकर आये चाहे सज्जन बनकर आये उससे ऐसे बचो जैसे ज़हरीले साँप से, चाहे वह घर से निकले चाहे वह बाहर से आये, बचने का

---

१. इस पुस्तक की छपाई के समय विदेशी क्रिश्चियन्स की ओर से लालच के तरह-तरह के भुलावे लोगों को अपने मत में खींचने के मिलते थे।

यत्न करते हैं। यह न समझना कि शील कौर डर गयी अथवा भूल गयी, वह शेर दिल ऐसी नहीं थी परन्तु उसके हृदय के कोमल और बुद्धिमान हिस्से ने झट समझ लिया था कि मीठी छुरी के आगे कायम रहना केवल शक्ति का काम नहीं, परन्तु साथ में बुद्धि की भी बहुत आवश्यकता रखता है, इसीलिए चाहिए कि सबका मन शील कौर जैसा बहादुर और समझदार हो जो वैर अथवा प्यार, किसी भी उपाय द्वारा शत्रु के काबू में न आये।

बहुत सोचने के बाद भी शील कौर को इस महल में से निकलना असंभव प्रतीत होता था, वैरियों से छुटकारा कठिन दिखाई देता था। बहुत बातें सोचती थी कि कैसे छुटकारा होगा, बुद्धि कोई रास्ता नहीं दिखाती थी। प्यारा पुत्र, माँ के सुख दुख का सहारा बैठा है, चाहे विपदा को जानता है, यह भी समझता है कि शत्रुओं में बैठे हैं, परन्तु माता की इस कठिनाई को नहीं समझ सकता, प्यार के सामान देख-देखकर और माँ की उदासी भाँप कर हैरान होता है। आखिरकार आलिंगन करते हुए बहुत प्यार से कहता है–'माँ जी! क्यों उदास हो? गुरु का शुक्र करो जिसने विपदा में सुख दिखलाया है।' इस धन्यवाद और इस भोलेपन ने माँ के हृदय में मोह का स्रोत प्रवाहित कर दिया, रोते-रोते उस ने प्यारे को सीने के साथ लगाया, और सिर उसका अपनी छाती से लगाकर उसके चित्त को प्रसन्न करने वाली चीज़ को, जो मोटी बोली में दिलासा कहलाती है, ढूँढने लग पड़ी। ऐसी दर्दनाक दशा देखकर सब सेविकाएँ उठ खड़ी हुई और नवाब को जा बताया। उनके दूर होते ही शील कौर की दूरन्देशी और हौंसला ऐसे उमड़ पड़ा जैसे पानी में लोहे से दबे काठ से लोहा उतार लें तो काठ ऊपर को चढ़ आता है। माँ पुत्र ने दरवाजे बंद कर लिए, संध्या का समय हो गया था, अंदर बैठकर बहुत प्रेम सहित रहुरास का पाठ किया, अरदास की गयी। आहा,

अकाल पुरुष धन्य है, जिसके आगे की गई प्रार्थना ने ऐसा आश्चर्यजनक असर किया कि वह निराश हो रही शीला अपने खालसाई जौहर में दमक उठी। जिस दिल में से भगदड़ मची गाँव जैसे, सोच विवेचना, आगे क्या करना है, बात क्या सब कुछ भाग गया था, अब ऐसा हो गया, जैसे किसी मरे हुए परिवार के पुरुष का दिल किसी खोये हुए भाई के अचानक मिल जाने पर विकास पकड़ लेता है। अब शीला को चारों ओर परमेश्वर दिखाई देता है, उसकी सत्ता अपनी सहचर सहेली प्रतीत होती है। अब शीला ऐसी पक्की उम्मीद में आनन्दित हुई है कि करतार मुझे कभी नहीं छोड़ेगा और कभी पाप में नहीं डूबने देगा। उसको धर्म प्यारा है, वह मेरे धर्म को ज़रूर बचायेगा। चाहे मुझे कोई विधि नहीं दिखायी देती परन्तु वह ज़रूर कोई रास्ता निकालेगा। शुक्र और भरोसा पूरी नम्रता के साथ शीला के हृदय में करतार के भेजे हुए सिपाही बनकर आ खड़े हैं। शीला ने सभी आसरे टूटे देखे, शीला निराश हो गयी, शीला ने प्रार्थना की, शीला का रक्षक करतार हो गया।

''सभो भजै आसरा चुकै सभु असराउ॥
चिति आवै ओसु पारब्रह्मु लगै न तती वाउ॥''

क्षण-क्षण बाद शुक्र करती है, और ऐसी मग्न हुई है कि खुशी और वैराग्य मिलकर आँसुओं का प्रवाह चला देते हैं। इस तरह प्रार्थना और शुक्र करते हुए शीला की सारी रात बीती। दुनिया के लोग विपदा की रात तारे गिन-गिनकर काटते हैं शीला ने उन पत्थरों और आग की ओर देखना छोड़कर उनको प्रकाश देने वाले जानकर अकाल पुरुष में लिव (ध्यान) लगायी, उसने ईश्वर के गुण गिन गिनकर रात काटी और उसके बिरद की लाज रखने वाली सत्ता की आराधना की। धन्य करतार, जिसने उसका विश्वास रखा। जब दिल ऐसे साफ हो गया, परमात्मा का आसरा/आश्रय जीवित सत्ता होकर अंदर भर गया तब बुद्धि भी साफ होकर काम करने लग पड़ी और उसको अपने छुटकारे के उपाय सुझाने लगी।

-कांड १५-

मीर मन्नू की बेगम मुराद बेगम जिसको कई इतिहासकारों ने 'मुगलानी बेगम' भी लिखा है, बहुत चालाक और सुन्दर स्त्री थी। इसने पति को भी वश कर रखा था और अपनी चतुराई के कारण पटरानी बन गई थी। ऊपर लिखी रात मन्नू ने उसके चौबारे में बहुत शराब पी थी और नशे के सरूर में बेगम ने उसको ऐसे अँगुलियों पर नचाया कि शील कौर को सिक्ख कैदी स्त्रियों में से निकाल लाने का और उसको बेगम बनाने का सारा कच्चा चिट्ठा कह बैठा। बेगम यह सुनकर जल उठी और कई छल-तरीकों से उसे पी हुई पर और पिलाती गयी, जब पति बेसुध हो गया और रात भी आधी बीत गयी तो बाहर के छज्जे पर आ बैठी और मन में सोचने लगी कि इस नयी सिर पर पड़ने वाली बला से कैसे बचूँ? बहुत विचार करने के बाद चुप किए दबे पैर कबूतर पकड़ने वाली बिल्ली की तरह महल के उस हिस्से में गयी, जहाँ शीला थी। दरवाजे तो बंद थे, परन्तु दरारों में से क्या देखती है कि दीपक जल रहा है और शीला प्रार्थना कर रही है। किसी समय कोई-कोई मतलब भी समझ आ जाये। यह देखकर उसका कलेजा ठंडा हो गया और मन ने तसल्ली दी कि यह तो गरीब गाय है और अपने सामने आयी खुशी को विपत्ति समझ कर बचने के लिए दुहाई दे रही है, इसको मना लेना आसान बात नहीं है। यह सोच कर निश्चिन्त हो गयी और जाकर सो गयी।

उधर सूर्य ने शुक्र जैसी अपनी एक आँख खोली, और करवटें बदलते ऊँघते लोगों की ओर तीखी नज़र डाली, इधर मुराद बेगम ने दोनों आँखें, जो सूर्य से भी तीखी थीं, खोली और नशे तथा

नींद में धुत्त अकड़ाते पति की ओर घूर कर देखा, पलंग से उठी, पति को पंखा करके सुला दिया, आप नहा-धोकर सोलह शृंगार करने के बाद पति को फिर जगाया और तैयार करके कुछ ख़िला पिलाकर दो पहरेदार सेविकाओं के साथ राज दरबार के ज़रूरी कामों के बहाने डयौढ़ी से बाहर भेजा। आगे से बेगम के दो भेदिए अर्दली साथ में चल पड़े। हाकिम साहब तो दरबार में जा बैठे और पंजाब जैसे मुश्किलों से भरे देश की व्यवस्था में व्यस्त हो गए। उधर बेगम हमारी शील कौर के पास पहुँची और उसे जल्दी ही बातों बातों में बहला लिया।

बेगम–मेरी पिछले जन्म की बहिन! कितनी देर के बिछुड़े मिले हैं। हम पीछे से एक ही हैं। घबरा के न देखो, मैं सच कहती हूँ। हम पीछे से बहिनें हैं। मैं पता नहीं क्या बुरे कर्म कर बैठी जो तुर्कों के घर पैदा हो गयी, इसलिए अब निर्वाह तो करना ही हुआ न? कल संध्या समय जब मैंने सुना था कि तुम यहाँ बंधी आयी हो, मेरे पैरों तले मिट्टी निकल गयी। कहूँ हाय हाय! क्या बनेगा। सिक्खों की बेटियाँ तो कभी धर्म नहीं हारतीं, कहीं बेचारी को प्राण न गँवाने पड़ें। इन विचारों में ही डूबती चली गयी। फिर मैं छिप कर तुझे देखने आयी। देखते ही बहिन! मेरी अँतड़ियाँ फट गयीं। कोई आंतरिक मोह जाग उठा एकदम अपनी बहिन लगी। मैंने उसी समय अपने मन में ठान ली भई मेरे प्राण चाहे जायें, परन्तु इस धर्मात्मा का सत्तीत्व ज़रूर बचाना है। इसलिए मैंने बहाने बना-बनाकर मालिक को बहुत शराब पिलाकर ऐसा बेहोश किया कि आप को वह भूल ही गया।

शीला (बहुत विनम्रता के साथ)–आपको करतार भाग्य दे और प्रताप बढ़ाये आपका हुक्म चले[१], आपने जो कुछ कहा है मुझ अनाथ पर बड़ी दया की है।

बेगम–बीबी कैसी दया? परन्तु देखो न, क्या करें? समय बहुत कठिन आ गया है। आजकल सीधे-सादे मारे जाते हैं, छल द्वारा ही सुख प्राप्त किया जाता है। आप तो खुदा के प्यारे दिखाई देते हो, आपको इन बातों से क्या? परन्तु हम सांसारिक लोग तो ऐसे ही जीते हैं - रोटी खायें शक्कर से, दुनिया खायें मकर (कपट) से। आप तो पवित्र देवी हो, मेरा मन करता है कि आपके चरण चूम लूँ।

शीला–श्री वाहिगुरु! बेगम जी! आप तो हो देश के राजा, हम चाहे हैं तो शेर स्वभाव वाले परन्तु इस समय हैं आपके कैदी, परवश पड़े हुए। ऊपर से आप कह रहे हो कि आप मेरे धर्म की रक्षा करोगे, यह मेरे ऊपर अहसान चढ़ा रहे हो! मुझे कोई सेवा बताओ?

बेगम–सेवा क्या, आप मुझे बहिन बना लो न।

शीला–बहिनें बनना तो दो तरफा खुले वातावरण में बसते हुए हो सकता है, साथ में हैसीयत भी एक जैसी हो। अब आप बेगम और मैं कैदिन!

बेगम–न बहिन! ये बातें छोड़ दो। आपका वंश शरीफ है, आप सच्चे और ऊँचे रक्त वाले दिखाई दे रहे हो, कैद आपकी खत्म हो चुकी है। अब आप स्वतन्त्रता के घर हो। अब मुझे बहिन बना लो। आप गुणों की खान हो। आपके आसरे मैं भी कुछ सीख लूँगी।

---

१. यह वाक्य थोड़े समय बाद फलीभूत हो गया था क्योंकि यह हुकूमत इसके हाथ आयी थी।

शीला–मैं कौन बेचारी हूँ?

बेगम–हठ छोड़ो, एक बार बहिन कहो, नहीं तो आपके सिर की सौगन्ध मुझे पानी पीना हराम है।

शीला–श्री वाहिगुरु! मुझसे यह न कहलवाओ, वैसे जो सेवा चाहो, अगर वह ठीक हो तो मैं इनकार नहीं करूँगी।

बेगम–आओ फिर अगर नहीं कहते, तो मैं मैं...(हाथ कटार के दस्ते पर जा पहुँचा)।

शीला–वाहिगुरु जी! हैं यह क्या? (हाथ पकड़कर) बहिन कहने में मुझे कोई एतराज नहीं, आप समर्थ और स्वतन्त्र हो, निभा सकते हो, मैं कैद में हूँ, मेरा निबाह बहिन बनकर बहुत कठिन है। मित्रता बराबर वालों में और आज़ादी में निभती है। मैं आपकी शुभचिन्तक हूँ, परन्तु बहिन मुँह से न निकलवाओ।

बेगम–(कटार निकालकर)–ये लो, अगर नहीं मानते तो मैं।

शीला–(हाथ पकड़कर)–न बहिन! यह काम मत करो, मुझे जो कहो हाज़िर हूँ। 'बहिन' शब्द मुँह से निकलने की देर थी कि बेगम ने ज़ोर से सीने से लगा लिया और रो पड़ी। प्यारी बहिन! मेरे दिल का दुख बाँटने वाली दर्दी मेरे पास कोई नहीं। मेरे चारों ओर नौकरानियाँ और मतलब के लिए प्यार करने वाली बहुत हैं, परन्तु आज खुदा ने तुझे मिलाया है, शुक्र है उसकी दरगाह का जिसने मेरे हाल पर रहम किया है।

शीला–शुक्रगुज़ार तो मैं हूँ जिसका इस समय अकाल पुरुष के अतिरिक्त और कोई दर्द बाँटने वाला नहीं, उस मेहरबान साँई ने ऐसी मुसीबत के समय आपको मेरा सज्जन बनाया है कि जिस समय कोई किसी का नहीं बनता। इस भारी प्रण को जो आज मैंने धारण किया है करतार कामयाबी दिलवाये, मुझ में सामर्थ नहीं, परन्तु गुरु मेरी लाज रखे। हाँ, एक धर्म आप भी मेरे साथ पालने का वचन दो।

बेगम–बताइये बहिन जी! मैं आपके सुख में सुख मनाऊँगी।

शीला–इस कैद में, जिस में मैं हूँ, मेरे सतीत्व की रक्षा आपको करनी होगी। मेरे प्राण जाकर भी अगर धर्म बच जाये तो तुम मेरी बहिनों की तरह सहायता करोगी।

बेगम–अल्लाह मेरा गवाह! तुझे और तुम्हारे धर्म को, जब तक मेरे दम में दम है गर्म हवा न लगने दूँगी।

शीला (आँखें बंद कर)–शुक्र है मेरे सिरजनहार अकाल पुरुष। तू धन्य है, तू धन्य है, तू बंदी छोड़, रहम कर, मेरे साँई जी को भी हाथ देकर रख अैर मुझसे मिला।

बेगम–बहिन! तुम्हारा पति कहाँ है और कैसे बिछुड़ा था?

शीला–झनां नदी के किनारे एक नगर के हाकिम ने मार-मार कर मरणासन्न कर कैद में डाल दिए थे, पता नहीं फिर क्या हुआ? हाँ! आती बेर जीवित दिखाई पड़े थे, परन्तु बातचीत नहीं हो सकी (नेत्र भर आए)।

बेगम–(आँखें पोंछकर)–बहिन! रोओ मत, तुम्हारे पति को मैं मँगवा दूँगी और उनका बाल भी टेढ़ा नहीं होगा, अब समझो कि सारी विपत्ति दूर हो गयी।

शीला–आप कितना प्यार करते हो, परन्तु एक रात तो आपकी कृपा से बीत गयी, इस मकान में रहकर कब तक बकरे की माँ ख़ैर मनायेगी?

बेगम–प्यारी बहिन! जब तक मेरे दम में दम है किसी की मजाल है कि तुम्हारी हवा की ओर भी देख सके।

शीला–करतार तुम्हें भाग्यशाली बनाये और अपना भय बख़्शे।

बेगम–बहिन जी! जैसे मैं कहूँ चलते जाना फिर कोई चिन्ता नहीं।

इस प्रकार बातचीत करने के बाद बेगम विदा हुई। बेगम के आदेशानुसार दो एक खत्री सेविकाएँ सेवा के लिए आ गयीं। माँ-पुत्र ने स्नान किया, प्रशाद खाया और कपड़े बदले। मैले कपड़े सेविकाएँ धोने के बहाने बेगम के पास ले गयीं। माँ पुत्र ने सारा दिन शुक्र करते हुए बिताया। संध्या होते ही बेगम के हुक्म अनुसार शील कौर उस दालान से सेविकाओं सहित किसी दूर स्थित चौबारे में बदल दी गयी।

संध्या हो गयी, अँधेरा छा गया, हाकिम साहिब ने चोर कोठरी में घुस कर थोड़ी सी पी ली जिस समय नशा आया और दिमाग ने गर्म होकर आतिशबाज़ी के चक्कर जैसे चक्कर खाया, बाकी रही अक्ल और अधमुई दया उस चक्कर में चक्कर खाने लगी, डगमगाते पैरों से आप उस कमरे की ओर चल पड़े जहाँ शीला कैद करवायी हुई थी। जब अंदर घुसे तो क्या देखते हैं कि उन्हीं मैले वस्त्रों में वह घूँघट निकाले बैठी है। आप को बहुत गुस्सा आया, नौकरानियों की मार पीट की, गालियाँ निकालीं, कमरे में से बाहर निकाल दिया। फिर आप उसको काँपते, थथलाते हुए बुलाने लगे। घूँघट में छुपी और शर्म में डूबी और काँपती हुई ने एक नहीं मानी। हाकिम साहिब ने तलवार खींच ली। अब वह हाथ जोड़ कर पैरों पर गिर पड़ी, नवाब साहिब जीते हुए मुर्गे की तरह टर्रा उठे! देखा हमने अपना हुक्म पूरा किया–सिक्ख की पत्नी को मना लिया (थिड़कते हुए झोंका खाकर) अब बेगम बनायेंगे पंजाब की मलिका कहलाओगी....। इस तरह के बकवास और झोंकों तथा नशीली ऊँघ में था नवाब कि बीबी को कपड़े बदलने पड़े, शृंगार लगाना पड़ा, परन्तु पहले किसी छुपे हाथ ने शमा को बढ़ा दिया था। अब रात इस तरह बीत गयी जैसे कोई काले रंग की बिजली दोपहर के समय धूप रूपी बादलों में से दौड़कर ऐसे गुम हो जाये

जैसे योगी पुरुष के हृदय में से लज्जा देखकर मंद वासना एक झलक देकर कुसंग (बुरी सोहबत) दूर होने पर लुप्त हो जाती है; मानो कमीले की आग भभक कर राख हो गयी, परन्तु जला कुछ भी नहीं।

जब दिन हुआ बेगम वैसाख के नए चढ़ते सूर्य की तरह चमकती शील कौर के कमरे में गयी, जो इस समय जपुजी साहिब का भोग डालकर (पूर्णकर) अरदास कर रही थी। दोनों सहेलियाँ प्रेम सहित मिलीं, बेगम ने बधाई दी कि आप की यह रात मैंने पूरे बचाव में कटा दी है और आगे के लिए भी कुछ ऐसा प्रबन्ध हो गया है कि आप का शील धर्म सदा के लिए बच गया, आप जल में कमल फूल की तरह रहेंगी, कोई आपकी ओर मैली आँख नहीं कर सकेगा।

शीला—बहिन जी! मैं आपके अहसान कहाँ से चुका सकती हूँ? आप तो कोई माँ मुझे मिल गए हो। शुक्र है कलगीधर जी का, जिन्होंने आपके हृदय में मेहर बसायी, परन्तु बहिन जी! मुझे बताओ तो सही कि आपने मेरी रक्षा कैसे की?

बेगम—यह बात बताने की नहीं।

शीला—मैं जिद्द नहीं करती, परन्तु अगर हर्ज़ नहीं तो बता दो।

बेगम—बहिन! मेरा तुम्हारा अब एक भेद है, तुमसे क्या छिपाऊँ। मेरे पति के ख्याल में तो वह आपको रानी बना बैठा है, परन्तु मैंने उसके साथ ठगी की है। आपके कपड़े पहन उदास/खिन्न बनकर, आपकी तरह बातें करके फिर अँधेरे की मदद से यह धोखा बनाया कि हूँ तो मैं परन्तु वह समझे आप हो, इस प्रकार पति नशे में मुझे पहचान नहीं सका। उम्मीद है इस नशे और अँधेरे की विधि कुछ देर तो निभ जायेगी फिर और उपाय सोच रही हूँ, अँधेरा सारे संसार पर पर्दे डालने वाला है, जो लोगों के कर्मों पर पर्दे डालकर

भले बुरे को एक समान करने वाला है। हाँ अँधेरा सहनशीलता का घर, धरती जैसे हौंसले वाला है। कोई उसमें खून करे, डाके डाले, चोरी करे, कोई भजन करे, समाधि लगाये, किसी की निन्दा और प्रशंसा नहीं करता, किसी के भेद नहीं खोलता। सूर्य और चाँद की नज़रें पर्दे भेदने वाली हैं, जो न केवल स्वयं लोगों की बुराइयाँ देखती हैं, बल्कि बड़बोले की जीभ की तरह सारे संसार में फैला देती हैं। तारों की चोर आँखें हैं जो कानों में फूँक मारने की तरह लोगों के भेद धीमे से उघाड़ देती है, परन्तु अँधेरा बहुत भला है, सबके पर्दे ढकता है। अँधेरा तो देखकर भी अनदेखा करता है परन्तु औरों की नज़रों पर भी पर्दे डालता है। न आप किसी के दोष देखता है और न किसी को देखने देता है। जिस तरह कोई भला पुरुष किसी को नंगा देखकर अपनी आँखें नीची कर लेता है, वैसे ही अँधेरा भले पुरुष की तरह आँखें बंद कर अपने काले रथ के पहियों को खींचता चलता चला जाता है और किसी के पाप पुण्य को नहीं देखता अँधेरा बहुत भला है, बहिन! इसी अँधेरे ने तुम्हारा धर्म बचाया है। मेरी समझ में तो अँधेरा आरफ कामल (ब्रह्म ज्ञानी) है, नहीं नहीं अँधेरे में तो वह गुण है, जो खुदा में है, खुदा सब के पाप पुण्य को जानता है परन्तु आलोचना नहीं करता, देखता है परन्तु बदनामी नहीं करता। पापी और पुण्यात्मा सब के खेतों पर एक जैसी बारिश बरसाता है। इसी तरह अँधेरा किसी के सिर नहीं आता। हाँ, अँधेरे में एक गुण ईश्वर से भी अधिक है। ईश्वर देखता है, ऐसा देखता है कि होने से पहले, होने के समय और हो चुकने के बाद सब कुछ जानता है: हाँ पर सहारा रखता है, परन्तु धन्य है अँधेरा जो लोगों के पापों को देखने और समझने से भी इंकार करता है, कहता है मैं क्यों किसी के पाप पुण्य का दृष्टा और ज्ञाता बनूँ? अपने कर्मों का फल सभी भोगते हैं मैं क्यों बुरे भले समाचार देखूँ और अपने सहनशीलता वाले मन में शक शुबहा पैदा करूँ और अपने दिल को औरों के पाप पुण्य का घर बना लूँ।

ऐसी चंचलता और परमेश्वर की बेअदबी के न सहे जाने वाले वचन सुनकर शील कौर घबरायी, काँपी, कुछ बोली, ठिठकी परन्तु मन को मुट्ठी में लेकर धैर्य धारण कर बोली :–बहिन जी! आपने चाहे कैसे किया, मेरा भला ही हुआ। मैं आपका अहसान किसी युग में नहीं चुका सकती; परन्तु बहिन कहा है तो एक बात मेरी भी सुन लीजिए, खुदा की शान में कभी हल्के शब्द नहीं कहने चाहिए।

बेगम–सत्य कहा है, हमारे में भी यह बात मनाह लिखी है।

इस प्रकार चालाकी और छल फरेब की बातें करने के बाद बेगम चली गयी और शीला पुत्र सहित हाथ जोड़ कर्त्ता पुरुष के आगे परम अधीनगी के साथ विनती करने लगी कि "हे धर्मपुंज पिता! तुम्हारी निन्दा मेरे कानों के ज़रिये मेरे अन्दर गयी है, इसलिए अपनी परम कृपा द्वारा मेरा हृदय शुद्ध करो और मेरे अवगुण बख़्श दो मैं विवश ही नहीं बल्कि परवश हूँ, मुझ पर अपनी मेहर करो! और स्वच्छन्दता में वास दो।"

उधर दरबार का हाल सुनो, मीर मन्नू जब अपनी कचहरी में बैठा था, तब भेदियों में से एक ने आकर पता दिया कि माझे में सिक्खों का एक टोला एक स्थान पर छिपा हुआ है। उसी समय कुछ सेना और दरबारी तैयार हो गए, उधर को कूच बोल दिया। बेगम साहिबा को सूचना गयी कि चार पाँच दिन नवाब साहिब का इंतज़ार न करें। यह खबर सुनकर बेगम और शील कौर बेफिक्र हो गईं।

नवाब साहिब रास्ते में सैर और शिकार करते गए, आखिर वहाँ पहुँचे जहाँ आदमियों का शिकार करना था। पंडोरी गाँव[१] के पास ईख का भारी खेत था, सिंह बाल, वृद्ध, जवान इसमें छुपे हुए

१. रतन सिंह जी ने पंडोरी का पता दिया है। ज्ञानी ज्ञान सिंह जी ने मुल्लांपुर के नज़दीक का ज़िक्र किया है।

थे। ये बेचारे वृक्षों झाड़ियों में छिपकर समय काट रहे थे। खाने पीने से भी वंचित रह जाते थे। काँटों और मौसम की सख्ती द्वारा कपड़ों की कतरनें, दूल्हे के छत्र की लटकनों की तरह शोभायमान हो रही थीं, अब यहाँ आ छिपे थे और गुरु महाराज की अरदासों की ओर झुक रहे थे कि अचानक इनके शिकारी आ पहुँचे। गाँव के लोग इकट्ठे हो गए। सभी हाहाकार कर रहे थे। ईख की फसल में छिपे पुरुषों की माताएँ बहिनें विलाप कर रही थीं। कुछ सिंहनियाँ रतन सिंह भंगू जी की माता और दादी सहित, बैरागी महन्त दादू राम के पोते ने भगवे कपड़े पहनाकर घर में छुपा रखी थीं।[१] दुखियों की चीखपुकार और गाँव वालों की हाहाकार कुछ ऐसी पड़ी कि मन्नू का घोड़ा सीख पा[२] हो गया। मन्नू गिर पड़ा उसका एक पैर रकाब में फँसा रहा और घोड़ा भाग खड़ा हुआ।[३] ऊबड़ खाबड़ जगहों में पके हुए तरबूज की तरह मोटा सिर रगड़-रगड़कर लगता और टकराता टकराता फटता गया, यहाँ तक कि नाक मुँह भी फट गए और रक्त की लकीर सारी घिसटने वाली जगह पर लगती सिंदूर की लकीर की तरह मन्नू की कर्म पत्री की लम्बाई की खबर सांसारिकों को दे गयी।

प्राण तो मीर मन्नू के ऐसे गए[४] अब शरीर का हाल सुनिए :– जब साथी उस मुर्दा शरीर को लेकर शहर पहुँचे और

---

१. रतन सिंह जी का पंथ प्रकाश।

२. पिछले पैरों को सीधे करके आगे के दोनों पाँव उठाकर घोड़े का डंडे की तरह सीधा होना।

३. रतन सिंह जी का पंथ प्रकाश।

४. मन्नू की मृत्यु की तारीख है ७ मुहर्रम ११६७ हिजरी (देखें खज़ाना-ए-आमरा ९८ इबरतनामा अलीउद्दीन)। उम्दा-तु-तवारीख ने कार्तिक सुदी ९ संवत् १८१० वि० दी है। ये दोनों तारीखें अंग्रेज़ी सन् १७५३ नवम्बर तीन चार के साथ आ मिलती हैं। लतीफ का सन १८५१ अशुद्ध है। गोकुल चंद नारंग सन १७५२ ई० लिखता है।

मौत की सूचना पानी पर पड़े तेल की तरह फैल गयी, तब सारी फौजें जो कई महीनों से तनख्वाह मिलने का इंतज़ार कर रही थीं घेरा डालकर खड़ी हो गयीं और लाश छीन ली। मुराद बेगम को कहलवा भेजा कि तीन लाख रुपया हमारी तनख्वाह का चुका दो तो लाश मिलेगी। बेचारी बेगम सारी रात जोड़-तोड़ करती रही। जब दिन में बेगम ने तीन लाख रुपया दिया[१] तब लाश मिली, जो बाद में बादशाही धूम धाम से दबायी गयी।

-कांड १६-

अब हमारे बिजय सिंह की दशा क्या हुई?

यह तो हम बता ही आये हैं कि सिंह सारे घने जंगलों, पर्वतों आदि में बिखर कर गुज़ारा कर रहे थे, और बैठ कर समय की ओर ताक रहे थे कि कोई दाँव लगे तो देश को सँभालें। इनके छिप जाने में पंथ के श्रमिकों अथवा गरीबों की, जो दलों में नहीं रहा करते थे, बहुत दुर्दशा हुआ करती थी। जब उनपर कहर के ज़ुल्म होते तब खालसा के दल समय भाँपकर गुस्सा खाकर शेरों की तरह वनों में से निकल पड़ते थे और शत्रुओं के साथ दो-दो हाथ कर जाते, अपनों को बचा लेते और द्रोहियों को पछाड़ देते। अब भी यही हाल हुआ घोर अत्याचारों और सिंहनियों के दुखों की खबर जब सिंहों में फैली और बिजला सिंह आदि ने दर्दनाक घटनाओं के समाचार कह सुनाये तब खालसा के दिलों में गुस्सा उतर आया और हर जगह यह यत्न हुआ कि एक बार लाहौर पहुँचना चाहिए। परन्तु सबसे पहले करोड़ा सिंह का जत्था लाहौर की ओर मुँह कर ऐसे चला, जैसे दरिया की बाढ़ चलती है।

---

१. उर्दू खालसा तवारीख हिस्सा २, पृष्ठ ८५

उधर भाई बिजय सिंह को भी यह खबर मिली, साथ ही साबर शाह फकीर के छोड़े हुए खुफियों ने खबर लाकर दी कि शील कौर भी सिंहनियों के टोले में लाहौर यातनाएँ भोग रही है। अब सिंह जी से सब्र करना कठिन हो गया। आप सिंहों की तैयारी की पक्की खबर सुन चुके थे। साबर शाह को वैराग्य में छोड़कर सिंह जी करोड़ा सिंह के दल में आ मिले। दल में पहुँचते ही इनका बहुत सम्मान हुआ। इनका यश तो सर्वविदित ही था और सभी सिक्ख अमीर के पुत्र का, जिन्होंने सब सुख छोड़कर काँटों की सेज दुखियों के हित कबूली थी, दर्शनों के अभिलाषी हो रहे थे। दोनों ओर से आपस में बहुत प्यार से मिले, मानो सगे भाई हों। आजकल सिक्खों की ओर देखो कि कौमी मुहब्बत दिलों में से कैसे घट रही है। सिक्ख के पास से सिक्ख कंधा रगड़ कर (टकरा कर) ऐसे अकड़ कर निकल जाता है जैसे कोई एकदम पराया हो। कहाँ सिक्ख को देखकर सिख प्रसन्न होते थे और बिना पहचान के भी फतह बुलाकर मिलते थे और अगर मुश्किल आ बने तो एक दूसरे की सहायता करते थे।

बात क्या अब खालसे के दल आ निकले, सेवा का काम और कुछ सवारों की जत्थेदारी बिजय सिंह के हाथ दी गयी। खालसा बहुत बचाव वाले रास्तों द्वारा कूच करता-करता एक दिन पौ फटने से पहले ही लाहौर के निकट जा पहुँचा[१] और सारे का सारा बिजली की तरह उस जगह जा पड़ा जहाँ सिंहनियाँ दुख भर रही थीं। पहरेदारों में से जिन्होंने टक्कर ली, इस तरह काटे गए जैसे गाजरें और बाकी के तुरन्त भाग गए। विजयी खालसा के सरदार उस दालान में एक छोटी दीवार गिराकर जा घुसे, जो ज़मीन के

१. पंथ प्रकाश।

अन्दर तहखाने जैसी थी।[१] सिंहनियों की दशा देखकर सबकी आँखों में लहू उतर आया। बच्चों के टुकड़े बिखरे हुए, बदबू फैली हुई, इन बेचारियों के हाथ पीठ पीछे बँधे हुए, कई स्तम्भों से जकड़ी हुई, कई मरी पड़ीं, कई सिसक रही थीं। कपड़े बेचारियों के कतरनों से भी आगे, चेहरे मजनूँ से भी कमज़ोर (मुरझाए), परन्तु जैसे मृत सर्प की मणि चमत्कृत रहती है, वैसे वाहिगुरु शब्द की ध्वनि उनके हृदयों में से आश्चर्यजनक प्यार से चमक दे रही थी। बिजय सिंह की फुर्ती और साथियों की चालाकी ने झटपट उनके बंधन काटने शुरू किए, सरदार करोड़ा सिंह अपनी चादर और बाकी साथियों के फालतू कपड़े ले-लेकर उनको देते जा रहे थे, जिनके वस्त्र फट-फट कर शरीर को छुपाने लायक भी नहीं रहे थे। पिछले जत्थेदारों में ऐसा प्यार और भावनाएँ होती थीं आजकल तो अनेक घराने शराब आदि कुकर्मो के शिकार हो गए हैं और फैशनों तथा दिखावों के पीछे लग कर गिर रहे हैं। कई ऐय्याशियों में पड़कर जागीरें और रिश्वत की कमाई बहा-बहाकर कंगाल होते जा रहे हैं।

इस समय सिंहों की आँखों की पवित्र और झुकी दृष्टि, सिंहनियों की शुक्रगुज़ारी और प्रसन्नता देखने लायक थी, 'सति श्री अकाल', 'वाहिगुरु जी की फतेह' और 'धन्य सतिगुरु' के जयकारे छोड़े जा रहे हैं। सारा काम फतेह हो गया। चाहे लाहौर में मन्नू की मृत्यु, मन्नू की फौज और मन्नू की बेगम और उमरावों के झगड़े हो रहे थे, परन्तु फिर भी तुर्कों की बादशाही की राजधानी के पास इस

१. इस स्थान पर मस्जिद जैसी इमारत आज तक खड़ी है और सिक्खों के कब्ज़े में है। यह सिंहनियों के दुखों की पवित्र यादगार है। बाद में १९३५ के आखिर में यह जगह गिरा दी गई। पाकिस्तान बन जाने पर अब पता नहीं क्या हाल है।

तरह पहुँचकर मार-काट करनी बहुत हिम्मत का काम था और चारों ओर कड़े ख़तरे से घिरी हुई योजना थी। इसलिए बहुत फुर्ती से एक-एक आदमी ने एक एक बहिन को घोड़े पर अपने साथ बिठा लिया, उस मकान में बच्चों के शरीरों के टुकड़े इकट्ठे कर और मृतकों को बीच में रखकर लकड़ी डालकर आग लगा दी।[१] और तुरन्त खिसक गए। दूर जाकर जत्थे ने एक वन में जाकर दम लिया। रास्ते में एक गाँव से राशन पानी ले गए। अब इस गाँव में पहुँचकर सिंहों ने कमरकसे खोले और रावी दरिया में, जो साथ ही बह रहा था, स्नान-पानी किया। बेचारी सिंहनियों को मुद्दत बाद जल नसीब हुआ, फिर लंगर तैयार किया गया। पहले सिंहनियों को खिलाया गया, फिर सब ने खाया। जब सभी तृप्त हो गए तब सरदार करोड़ा सिंह और बिजय सिंह ने खाया, क्योंकि ये दोनों भले आदमी लंगर बाँटने की सेवा कर रहे थे। क्योंकि सिक्खी के नियमानुसार जत्थेदार भी सेवा को जीवन सफलता समझता है। अब ऐसा प्रबन्ध किया गया, जिसके अनुसार प्रत्येक सिंहनी को उसके गाँव-परिवार में पहुँचाया गया। जिस किसी के सम्बन्धियों में से कोई जीवित नहीं रहा था वह जत्थे में ही सेवा के काम करने के लिए रही, और अपने भाइयों की विपत्ति में हाथ बँटाकर जन्म मरण सँवारती रही। बिजय सिंह जी को शील कौर का ठीक-ठीक पता न लगा। यह तो खबर मिल गयी थी कि मन्नू उसको कैद में से महलों में ले गया था, परन्तु अब सुना कि उसको रानी बना लिया था। इस खबर को सुनकर किसी को विश्वास नहीं हुआ कि यह बात सत्य होगी। बिजय सिंह ने तो पुकार कर कह दिया था कि अगर मेरी पत्नी

१. इस स्थान पर बाद में गुरुद्वारा निर्मित किया गया था ताकि यादगार रहे।

जीवित है तब ज़रूर सत्यधर्म सहित जीवित है, अगर मर चुकी है तब धर्म को साथ लेकर गयी है, यह बात असंभव है कि सिंहनी धर्म त्याग कर जीवित रहे। लोग तो प्राणों के आसरे जीवित रहते हैं परन्तु सिंहों के प्राण धर्म हैं, ये धर्म के सहारे जीवित रहते हैं, जब मरते हैं तो धर्म को साथ ले जाते हैं, जीते हैं तब धर्म को प्राण बनाकर जीते हैं। यह कभी नहीं हो सकता कि धर्म हार कर कोई सिंह अथवा सिंहनी जीवित रही हो।

इसका कारण यह था कि ये लोग नाम के प्यारे थे, बाणी इनका आधार थी। सत्य गुरुओं के हुक्म अनुसार बाबा बंदा के समय से जैसे दशम पातशाह के समय था वैसे सिंहों के दलों में वाणी के पाठ का रोज़ाना रवैया बहुत पक्का चला आ रहा था। वाणी ने अपनी रंगत चढ़ानी ही थी, पवित्र ऊँचा जीवन, कुर्बानी और प्यार वाणी ने भर ही देना था।

मीर मन्नू का मरना जब सारे देश में सुना गया तब सिंह वनों में से ऐसे निकल पड़े, जैसे रात बीतने पर सूर्य निकल पड़ता है। सारे देश में हलचल मच गयी। सिंहों ने पहले हाथ उन लोगों को दंड दिए जिन्होंने शहरवासी सिंहों, सिंहों के बच्चों और औरतों को पकड़-पकड़ कर मारा और मरवाया था, जैसे :-

उन सब चुगलों ताईं चुन चुन। मारयो लूटयो घर सिंहन पुन। नूरदीन की लुटी सरांय। सिंह कोट मारयो फिर धाए। लूटयो सिंहन नगर मजीठा। मारयो जंडिआला फिर नीठा। करमे छीने दा परिवार। मार लूट कै करयो खुआर। रामे रंधावे का ग्राम। घणीआं लूटयो अैन तमाम। सैदे वाले का जट दयाला। पैंच निबाहू भूरे वाला। इस्माईल खां था मंडयालिया। आकल दास

महन्त हंदालिया। रंघड़ मारे जा बुतालिये। सिद्धे कीते जट्ट बुंडालिए। घेर औलिए खां को मारयो। हसना भट्टी जम घर बारयो। माल्ह पुरिये गुलाबे केरो! फगवाड़ा भी लुटयो बधेरो। इतिआदिक ठौरन के लोग। मुखबर थे जो मारण जोग। सो मारे, साजन बहु पारे। मारे पैंच नुशहरे वारे। लए दुश्मनों ते बड बदले। सिंहन मार मचायो गदले।

(पंथ प्रकाश, टाईप पृष्ठ ७१३)

इस प्रकार सिक्खों ने स्थान स्थान पर अपने कैदी छुड़ाए, अपराधियों को दंड दिए और फिर देश को संभालने की ओर लग गए, परन्तु उधर मुराद बेगम बहुत चालाक, शोभा वाली और समझदार स्त्री थी। उसने पति के मरते ही सारे दरबारियों, अमीरों और वज़ीरों को अपने साथ जोड़ लिया था और अपने तीन वर्ष के बालपुत्र को गद्दी पर बिठाकर आप सरपरस्त बनकर राज्य करने लग पड़ी। इसने अपने वकील काबुल, दुर्रानी बादशाह की ओर चोरी-चोरी भेज़ दिए कि आप पंजाब की नवाबी मेरे पुत्र के हक में मेरी सरपरस्ती में कर दें। इसी तरह इसने दिल्ली के बादशाह की ओर चोरी वकील भेज दिए कि लाहौर की सूबेदारी मेरे पुत्र के नाम ही कर दें। इस तरह दोनों बादशाहों ने बेगम के पुत्र 'अमीनुद्दीन' को सूबेदार और बेगम को सरपरस्त मानकर खिल्लत और परवाने भेज दिए[१]। कारण यह था कि काबुल वाला लाहौर को अपनी रियासत और दिल्ली वाला अपनी रियासत जानते थे। इसलिए पंजाब का राज्य वही कर सकता था जो दोनों को प्रसन्न रख सके।[२] राजकाज

---

१. मुहम्मद लतीफ पृष्ठ २२६

२. इन समाचारों को कई इतिहासकारों ने लिखा है।

संभाल कर बेगम देश का प्रबन्ध सँभालने में जुट गयी। सबसे बड़ा दुख सिक्खों का था इसलिए मोमन खाँ नायब को फौजें देकर शांति करवाने के लिए लगाया और भिखारी खाँ को - जिसकी बनवायी हुई सुनहरी मस्जिद इस समय तक लाहौर में है - वज़ीर तय किया। यह बहुत भला, सुन्दर और चतुर पुरुष था, इसकी सलाह से बेगम का राज्य पति की तरह ही चल पड़ा।

शील कौर और उसका लाल (पुत्र) महलों में ही रहे। जब मीर मन्नू शिकार पर गया था तब बेगम ने पूरी योजना इस बात की बना ली थी कि उसके आने से पहले ही माँ पुत्र का झगड़ा पार कर दे परन्तु उधर से मन्नू के मर जाने की ख़बर आ गयी। अब बेगम को अपनी बनावटी बहिन का अपने पास रहना एक सुख और आसरा दिखाई दिया। शील कौर की बुद्धि और अच्छाई उसको समझ आ चुकी थी। इसलिए अब उसकी सलाह और बुद्धि का प्रयोग करने लगी। उसकी निर्मल बुद्धि उसको कई कठिनाइयों में ऐसी सलाहें देती थी कि बेगम वाह-वाह कर उठती थी। इस तरह बेगम के मन में शील कौर का आदर बढ़ा और उसकी सचमुच की हितैषी हो गयी। भिखारी खाँ को दरबारी कामों के बाद बेगम कई बार महलों में बुला लिया करती थी, परन्तु शील कौर ने समझाया कि इसका अंत बुरा निकलेगा और राजपाट नहीं रहेगा। बेगम ने यह बात जिस किस तरह मान ली तब उसको पता लगा कि दरबारी भी इस बात को अच्छा नहीं मानते थे। इस प्रकार की उत्तम सलाहों ने शील कौर को कैद में भी अमीरी पर पहुँचा दिया। पर शोक! शील कौर कभी खिल कर नहीं बैठी, सदैव कुम्हलाई हुई रहती। पति का वियोग उसके चित्त पर ऐसा पत्थर था, जो हृदय को उमगने ना देता। यह दुख ऐसा भारी था कि शील कौर अगर परमेश्वर की

प्यारी न होती तो ज़रूर दुख में घुट-घुट कर मर जाती, परन्तु ईश्वर की मर्जी को सिर माथे स्वीकार करने के यत्न ने उसके शरीर और आत्मा का वियोग नहीं होने दिया। जैसे टहनी से टूटे फूल ठंडे मौसम और शीतल जल में रखे हुए कई-कई दिन सूखते तो नहीं, परन्तु टहनी वाले यौवन और प्रसन्नता वाले भी नहीं रहते, वैसे ही शीला सोच में डूबी, परन्तु स्वच्छ माथे वाली, चिन्तातुर परन्तु विह्वल होने से दूर ग़म में डूबी हुई, परन्तु पास बैठे हुए लोगों को गिरावट में न लगने वाली दशा में रहती थी। बेगम इस दुख को जानती थी और उपाय सोचती थी कि किसी तरह इसका पति आ जाये तो बेचारी का दुख दूर हो जाये और मेरा सुख और अधिक बढ़ जाये, क्योंकि उसको अन्तरंग सहेली और सच्ची हितैषी इससे अधिक समझदार तथा प्यार वाली मिलनी मुश्किल थी। पहले तो बेगम ने झनां के हाकिम से पता मँगवाया, जिसने साबर शाह से पता करने की बात कही। वहाँ से पता लगा कि बिजय सिंह कहीं जत्थों में चला गया है इसलिए बेगम ने बिजय सिंह का हुलिया और अता-पता देकर पाँच सात भेदिए छोड़ दिए जो सिंह जी का पूरा-पूरा पता निकालें।

इधर सिक्खों की फिर से जीत प्राप्त करने का बाज़ार गर्म हो रहा था। जैसा कि हम पीछे कह आये हैं, जिस लिए बेगम ने मोमन खाँ के सुपुर्द गश्ती फौज करके देश में भेजी हुई थी। कई स्थानों पर मुठभेड़ें हुईं, कभी वे जीते और कभी वे। आखिर शेखूपुरे के पास मोमन खाँ के भड़काये हुए जाटों (जट्टों) के साथ सिंहों के एक टोले का मुकाबला हो गया। जिसमें चार पाँच अच्छे सिंह शहीद हो गए। परन्तु खालसे के आक्रमण के आगे वे ठहर न सके, पैर हिल गए और मैदान खाली छोड़कर भाग गए। भाई बिजय सिंह

इस लड़ाई में आगे बढ़-बढ़ कर लड़ता रहा था। जब हल्ला बोला तब भी आगे था, उस घमासान में एक तुर्क की तलवार रान पर लगी; इस मर्द ने टाँग को बाँध लिया और पीड़ा नहीं जताई, बढ़-बढ़कर तलवार चलाता रहा। आखिर उसका घोड़ा घायल होकर एक ओर गड्ढे में गिर पड़ा। इस गड्ढे में पहले से ही एक सिक्ख और दो मुसलमान लड़ते लड़ते गिरे पड़े थे, जिनका समाचार यह था :-सिंह तो पहले ही कई आदमियों को मार-काट चुका था, फिर दोनों तुर्कों ने उसको घेर लिया। तीनों की तलवारें टूट जाने के कारण हाथों का तथा दाँव पेंच का संघर्ष ही होता रहा। गुत्थम गुत्था होते हुए यह हुआ कि तीनों आदमी एक दूसरे की टक्कर खाकर गिर पड़े, सिंह जी तो स्वर्ग सिधार गए और तुर्क दोनों रेत पर मछली की तरह तड़पते पड़े थे कि जब हमारे सिंह जी घोड़े सहित आ गिरे। गिरते ही इनकी चोट ने तुर्कों का दम पूरा कर दिया और सिंह जी बेहोश हो गए। इस समाचार को किसी ने नहीं देखा, सिंहों का टोला तो तुर्कों को भगाकर और उनके स्वदेशियों को योग्य दंड देकर दूसरी दिशा में लुप्त हो गया और जल्दी में इस बेचारे की किसी को सुध ही नहीं रही। सारी रात, तीन लाशें सिरहाने की ओर तथा मृत घोड़े के साथ टाँग बंधी हुई औंधे मुँह पड़े सिंह जी की बेसुधी में बीत गयी।

सिक्खों के साके, मेहनत, बहादुरी और कष्टों के समाचार बहुत तो लिखे नहीं गए, परन्तु जो रत्ती भर लिखे भी गए वो सिक्खों की लापरवाही के कारण, लिखित इतिहासों में छिपे पड़े हैं, जो मिलने मुश्किल हो रहे हैं, इसलिए सिक्खों को अपने पीछे की खबर नहीं जिस पर फख्र करें। अनजान सिक्ख भ्रम खा रहे हैं। देखो इस समय सिंह जी कैसे अपने जिगर के लहू के प्याले पीकर

गड्ढों में लाशों की शैय्या बिछाकर सो रहे हैं। अमीरी और धन की बहारें छोड़कर कहाँ पड़े प्राणों को तोड़ रहे हैं, जहाँ अपना अथवा पराया कोई पास नहीं है। क्या इन शूरवीरों को लूट का लालच घरों से निकालकर गड्ढों में खींच लाया है? अफसोस! सिक्ख लोग इतिहासकारों की पुस्तक पढ़े बिना ही राय कायम कर लेते हैं। ज़रा ऐलफिन्स्टन की तवारीख में बंदे की मौत और ७४०* सिक्खों की शहीदी का हाल ही पढ़ें तो रोयें खड़े हो जाते हैं। क्या ये लोग भांग पीकर सो जाते थे अथवा अपने भुजदंडों की न थकने वाली ताकत के साथ नौ सदियों के अत्याचारों का निशान तक मिटाकर इस समय अन्यायी राज्य की मिट्टी उड़ा रहे थे? बेशक सिक्खों ने तब हिन्दुस्तान से बाहर कदम नहीं रखा था, परन्तु कभी किसी ने यह भी सोचा है कि पंजाब उस समय क्या वस्तु था? अहमदशाह अब्दाली जैसा भयंकर हमले करने वाला साहसी पड़ोस में बैठा था।

---

* देखें 'इतिहास हिंद', एलफिंस्टन पृष्ठ ६८६-"बहुत सारे सिक्ख वहाँ ही मारे गए परन्तु ७४० चुनकर बंदे के साथ दिल्ली भेजे गए जिनको उल्टी खालें पहना, ऊँटों पर चढ़ा तरह-तरह के दुखों द्वारा पीड़ित कर के सात दिनों में कत्ल किया परन्तु वे बहुत ही दृढ़ता से मरे, प्रत्येक लालच को घृणा की नज़र से देखा और धर्म नहीं हारा। बंदे (बंदा बहादुर) को पिंजरे में डाला, सिंहों की खोपड़ियाँ साथ में लटकायीं। बिल्ली मार कर भाले पर लटकायी। नंगी तलवार लिए जल्लाद सिर पर खड़ा करवाया, उसका बाल पुत्र झोली में देकर कटार हाथ में दी कि अपने पुत्र को आप मारे, परन्तु उसने इंकार किया, उसका पुत्र उसकी गोद में कोचा गया और उसका दिल आँतड़ियाँ आदि निकालकर उसके मुँह पर फेंके गए। छड़ें गर्म कर-कर के उसके शरीर के रोयें उड़ाये गए, परन्तु बंदा न हिलने वाली दृढ़ता के साथ प्रसन्न मन रहा कि जालिमों द्वारा नष्ट करने के लिए करतार ने मुझे कारण बनाया है।" यह गुरु गोबिन्द सिंह जी के एक सेवक की बहादुरी का नमूना है। इसके साथी ७४० में से सब ने सिर दिया, परन्तु धर्म नहीं हारा, किसी ने भी प्राणों से मोह नहीं दिखाया।

इसके अधीन बड़े-बड़े तगड़े ताकतवर पठान थे। अफगानिस्तान और सरहद इसके कब्ज़े में थे। लाखों की संख्या में फौजें अनेक बार लाकर इसने देश लूटा था। फिर लाहौर छोड़ कर इलाके-इलाके पर जबर्दस्त हाकिम थे तथा पत्ता-पत्ता सिक्खों का दुश्मन था। न इलाका, न रियासत, न ख़ज़ाने, कोई ठिकाना नहीं, कोई सहायता नहीं, कोई मित्र नहीं, मुसलमान हिन्दू सभी वैरी, यहाँ तक कि घर के सेवक हिंदाली तथा कई और मुखबिर बने हुए। ऐसे डरावने हालातों में जिस कौम ने अटक से लेकर सहारनपुर तक, मुल्तान और सिंध से लेकर कांगड़ा जम्मू और भिंबर तक[१] अपना सिक्का जमा लिया हो और दिल्ली, पटौदी दुजना, बीकानेर तक आक्रमण किए हों, उसने मराठों से कहीं अधिक बहादुरी दिखायी है, जिनके पास पहाड़ी किले पहाड़ों में छिपने की जगह, सेवा जी जैसे सरदार सिर पर, फिर एक दूसरे के बाद लायक पुरुष पथ प्रदर्शक बनते रहे और हर प्रकार की सहायता के सामान मौजूद थे। जो कुर्बानियाँ सिक्खों ने की दुनिया के इतिहास में सबसे बढ़िया हैं।[२]

अगर कभी इतिहास का अध्ययन करो, तो पता लगे कि अहमदशाह अब्दाली ज़रूर हिंद को जीत कर फिर से पठान राज्य यहाँ स्थापित कर लेता, परन्तु पंजाब में आए सिक्ख उसको अत्यधिक तंग करते थे। जब वह दिल्ली पहुँचता तो सिक्ख पंजाब

१. देखें तवारीख अंग्रेजी मुहम्मद लतीफ पृष्ठ २८९

२. गुरु गोबिन्द सिंह जी के ज्योति ज्योत (स्वर्गवास) समाने के समय सिक्खों के पास एक इलाके का भी राज्य नहीं था, इस समय करीब ५० साल बीता था जिस समय सिक्खों ने कड़े शत्रुओं के साथ लड़-लड़कर इतना भारा इलाका संभाल लिया। नैपोलियन और मुहम्मद साहिब और सेवा जी के समाचारों का मुकाबला करने पर सिक्खों की बहादुरी का ठीक अंदाज़ा होता है। बिना सारे समाचारों के सोचे वास्तविक बात का पता नहीं लगता।

में वह ऊधम मचाते कि उसको फिर पीछे लौटना पड़ता। इनसे मुकाबले और पीछे करने ऐसे जबर्दस्त थे कि इन्होंने उस ज़ालिम को हिन्द में फिर से विदेशी पठानी राज्य स्थापित करने में कामयाब नहीं होने दिया। बड़े घल्लूघारे (सर्वनाश) की वीरता ने अब्दाली के हौंसले को अंदर से तोड़ दिया था। फिर सिंहों के कारनामे देखने हों तो किसी अंग्रेज़ी इतिहास[१] में ही सही, नुशहरे का सिंह युद्ध पढ़ लें तो भी कुछ पता लग जाता है कि सिख किस बहादुरी के व्यक्ति हुए हैं।

हम तो और ही तरफ चले गए, आओ अपनी आपबीती की लड़ी को पकड़ें। प्यारे बिजय सिंह की लाश सारी रात मद्धम श्वास ले लेकर वक्त गुजारती रही जैसे भादों की गर्मी में बहुत ऊँचे पत्ते तनिक तनिक हिलते हैं। सुबह हुई तो भागे हुए लोग अपने गाँव संभालने के लिए घरों को आए। इधर किस्मत के धनी पंडित जी, चूहड़मल्ल के पुरोहित जी, जो लाहौर के भेदियों में से एक थे, उधर आ निकले। इनके साथ कुछ सिपाही भी थे। गड्ढे के पास से निकले तो 'श्री वाहिगुरु' की मद्धम आवाज़ कानों में पड़ी। आवाज़ सुनते ही आप ठिठके और करीब आकर देखने लगे। 'ओह! ये तो बिजय सिंह तड़प रहा है।' आप के पाँव तले धरती निकल गयी। ये अपनी ओर से उसको मरवा चुके थे, कीमत वसूल कर खा चुके थे, अब आँखों के आगे फिर जीवित दिखाई दिया। लाहौर में से

१. देखें ग्रिफन का रणजीत सिंह। नैपोलियान और रणजीत सिंह का मुकाबला करते हुए उसने सिंह जी की अधिक प्रशंसा की है, वो लिखता है कि नैपोलियन कई साल कैद में रहकर मरा परन्तु सिंह जी का मरते दम तक हुक्म माना जाता रहा। जीभ मारी गयी परन्तु संकेत द्वारा हुक्म जारी रहा, किसी ने आँख ऊँची नहीं की। चाहे इस इतिहासकार ने समाचार किसी अनोखी रंगत में लिखे हैं, परन्तु सत्य छिपता नहीं।

जब भेदिए तलाश करने निकले थे, तब इसको पता लग गया था कि बेगम को भेदियों की आवश्यकता है क्योंकि सारे मुखबिर आपस में भेदी होते थे, यही हाल इसका था। जब इसने यह बात सुनी, तब बेगम के पास अर्जी देकर आप भी इस काम का भेदिया तय हो गया और सरकारी खर्च पर देश में घूमने लगा। इसके विचार में तो बिजय सिंह मर चुका था, परन्तु बेगम की तलाश से उसने यह परिणाम निकाल लिया था कि बिजय सिंह कोई सरकारी नुकसान करने के बाद कैद में से निकल गया होगा, तभी बेगम बहुत इच्छा से खोज करवा रही है। यह बात सोचनी कि बेगम वैर के साथ सिंह को नहीं खोज रही, उसके लिए अनहोनी बात थी। उसने समझा कि सजा देने के लिए बेगम ढूँढ रही है, इसीलिए आप भी भेदिया बन बैठा था। अब उसको जीवित देख कर चाहा कि इसको मरवा दे, शत्रु भी मर जाये और कोई शंका भी न रहे, अगर कहीं जीवित दरबार में पहुँचे तो कोई और घटना न घट जाये। यह सोचकर सिपाहियों को बहुत जल्दी में बोला, वह आदमी है, जिसको हम ढूँढते घूम रहे हैं, मारो गोली जीवित भाग न जाये, यह तो अकेला तुम दोनों के लिए काफी है। सिपाही हँस पड़े, और सोचने लगे कि हुक्म है पकड़ कर लाओ, मारने का हुक्म नहीं, इसलिए कहीं मार कर ले जाने पर हमारा इनाम न मारा जाये, इसलिए भेदिए का कहा न मानकर गड्ढे में उतरे। बिजय सिंह की टाँग को घोड़े के नीचे से निकाला और रान को सीधा कर बाँध दिया। एक पालकी मँगायी, पानी पिलाकर तथा और उपचार करके उसे पुनर्जीवित किया। भेदिए जी मार देने के हक में थे, परन्तु सिपाहियों की जिद्द देखकर उसी ओर पलटा खा गए और सोचने लगे कि चलो लाहौर चलकर मारा जायेगा, बल्कि मारने का जिम्मा

बेगम के सिर रहेगा। यह भी सोच लिया कि इनाम बहुत अधिक मिलेगा अगर कोई बात हमारी सोच के विपरीत निकल गयी तो चार दिन इधर उधर हो जायेंगे। कौन सा पंजाब का राज्य कोई स्थायी राज्य है। इस तरह बिजय सिंह जी लाहौर आये। पंडित जी और सिपाहियों ने इनाम लिया और बिजय सिंह जी चारपाई पर लेटे महलों में पहुँचाये गये। बेगम ने दर्शन नहीं किया, क्योंकि उसके पुत्र को माता निकली हुयी थी और वह उसके इलाज में व्यस्त थी परन्तु फिर भी कई हकीम सिंह जी के उपचार के लिए लगाये गये। सारा बंदोबस्त सुख का हो गया। इस समय शील कौर भी महलों में कुछ अधिकार रखती थी।

क्या आश्चर्य है! बिजय सिंह जो गड्ढे में पड़ा मानों अपने अंतिम श्वास ले रहा था, फिर अपने पुत्र और पत्नी के पास पहुँचा। पत्नी और पुत्र की खुशी की इस समय कौन सी हद्द थी, जिनको प्यार का साँईं फिर जीता जागता मिल गया था। वाह वाह, धन्य परमेश्वर और धन्य परमेश्वर जी के कारनामे! शीला जी ने अनथक पति की सेवा की, दिन रात पास बैठी सेवा करती रहती। चाहे अनेक सेवा करने वाले इस समय उपस्थित थे, परन्तु शील कौर स्वयं सेवा करके धन्य भाग्य समझती। हकीमों का उपचार तो था ही परन्तु पत्नी की प्रेम सेवा सबसे अधिक अच्छा असर छोड़ रही थी। बात क्या, खुशी और सेवा से शरीर ठीक होने लगा। कुछ समय में ही सिंह जी राज़ी खुशी हो गए। कठोर दाँतों में जैसे जीभ रहती है वैसे ही शत्रुओं के महलों में खालसा का दुखी परिवार फिर सुखी रहने लगा। करतार ने दिन फिराए तो उल्टे भी सीधे हो गए। कहाँ वनों की विपत्तियाँ और कहाँ ये बादशाही सुख? शीला की ओर देखो तो वसन्त की सरसों की टहनियों की तरह खिल रही है,

भुजंगी की ओर देखो तो वन के हिरणों के बच्चों की तरह चौकड़ियाँ भरता घूम रहा है, बिजय सिंह की ओर देखो तो गुलाब के फूल की तरह चमक रहा है, परन्तु इस आनन्द में खालसाई परिवार मस्त नहीं हो गया, अपने भाइयों में पहुँचकर पंथ की सेवा करने का उपाय सोचते ही रहते हैं।

-कांड १७-

बेगम बेचारी के सिर पर एक और विपत्ति आ पड़ी। उसकी उम्मीदों का नौनिहाल, पंजाब का मालिक तीन साल का नवाब इकलौता बच्चा 'अमीनुद्दीन' शीतला के रोग से तड़प-तड़पकर इस संसार से चल बसा। बेचारी के लिए तो आपदा आन पड़ी, सारा संसार आँखों आगे आ गया। पति मरा था तो राजपाट तो नहीं गया था, वह इस बच्चे के बहाने बच गया था, परन्तु शोक! इस लाडले की मृत्यु से तो सब कुछ उड़ गया दिखायी देता है। परन्तु शील कौर की नेक सलाह ने बेगम को इस असह्य दुख में भी उत्तम सहारा दिया। रात को बेगम बिजय सिंह के पास सलाह लेने पहुँची। सिंह का सुन्दर चेहरा बेगम के दिल में कुछ घर कर गया हुआ था। उस बेचारी ने कहाँ किसी सुडौल सुन्दर सिंह का दर्शन किया था, ऊपर से जब सिंह जी के साथ बातें की और सलाह मशवरे पूछे, तब उसकी मीठी आवाज़ और लुकमान वाली दूरन्देशी की बुद्धि देखकर बेगम के मन में बड़ा गुणी और आदरयोग्य समझदार लगने लगा। बिजय सिंह ने उसको समझाया कि दरबारियों को मुट्ठी में लेकर पहले जैसे नवाबी अपने नाम करवा ले। दोनों पक्ष आपके प्रबन्ध से खुश हैं। इधर सिक्खों के साथ लड़ने के स्थान पर कोई सुलह का कदम उठा लो, प्यार से सुख छा जायेगा। सुबह ही बेगम

ने दरबारियों को बुलाकर ऐसी बातचीत की सभी को मुट्ठी में ले लिया और हुकूमत आप संभाल ली। विश्वासी आदमी दिल्ली और काबुल भी भेज दिए। अब बेगम के नाम दोनों ओर से नवाबी के परवाने आ गये और मुराद बेगम सारे पंजाब की रानी बन गयी। थोड़े दिनों में ही बेगम ने अपना आधिपत्य जमा लिया और स्त्री का डंका बहादुरों के देश में बजने लग पड़ा। परन्तु सिक्खों से मिलने की सलाह दरबारियों ने नहीं दी। सिंह अब कहीं-कहीं सिर उठाते, पर फिर भी मोमन खाँ की गश्ती फौज उनको छिपने पर मज़बूर कर देती। एक दिन सिंहों ने कहा, भई कोई मोमन खाँ का सिर काट कर लाये, यह अलक्ष्य तो खत्म हो। भाई मनी सिंह जी के भतीजे अघड़ सिंह जी ने भेस बदल कर लाहौर को कूच किया और दाँव पाकर मोमन खाँ को, जब वह दरिया के किनारे बैठा था, जा चुनौती दी और कहा : 'खाँ जी! क्यों लोगों से बेगुनाहों को मरवाते हो, आओ मर्द बनो दो-दो हाथ कर लें, देखें आप में कितनी मर्दानगी है।' मोमन खाँ घबरा उठा, तलवार और ढाल संभाली। अच्छा मुकाबला किया, परन्तु बहुत संग्राम के बाद सिंह जी ने मोमन खाँ का सिर उतार दिया और उसी की घोड़ी पर चढ़कर ऐसे हवा हुए कि कहीं तुर्कों के हाथ नहीं आये और सिर जा खालसे के दीवान में पहुँचाया[१]। सरकार पंजाब में अब कोई और ऐसा बली सरदार न था, जो उनका पीछा उनकी तरह डट कर करता, बल्कि बीच बीच में बेगम के एक आध दरबारी ही सिक्खों को उकसाने लगे कि आप फसाद करो और शोर मचाओ, जिससे बेगम हमारी कद्र करे। इसका कारण यह था कि सारे दरबारी बेगम के साथ

१. पंथ प्रकाश में प्रसंग देखें पृष्ठ ७१६ (छठा संस्करण)।

अंदर-अंदर से बिगड़ रहे थे, क्योंकि बेगम ने राजपाट प्राप्त करके अकड़ बढ़ा ली थी। पंजाब को अपने चरणों में देखकर अबला औरत की नज़र चौंधिया गयी थी। वह चाहती थी कि 'कोई मेरे हुकम के आगे चूँ न करे, कोई कही बात न मोड़े।' लाखों करोड़ों रुपये बेगम के हाथों में, अवस्था खाने की और मौज मस्ती की, मुफ्तखोर खुशामदी चारों ओर, बढ़ा चढ़ा कर प्रशंसा कर-कर के लूटने वाले, खाना खराब साथी आस पास थे। शालामार जैसे सुन्दर बाग सैर करने के लिए, सुन्दर जवान सखियाँ बुरे कामों में लगाने वाली, खाने-पीने पहनने सुख के सभी साधन पास। भला अगर इस समय मान, अहंकार और सब कुछ को तुच्छ समझने का कीड़ा सिर में ना घुसे तो किस समय घुसे? बेगम सब के साथ अकड़कर पेश आने लगी। दरबारियों और उमरावों के अधिकार घटाने शुरू कर दिए, जो करे सो आप, हो हुक्म दे सो आप। इस पर एक भूल यह हो गयी कि बेगम ने भिखारी खाँ का मनसब बहुत बढ़ा दिया और दिल से उसकी सुन्दर शक्ल पर मोहित हो गयी। चाहे एक बार शील कौर के कहने पर टल गयी थी परन्तु यह आग अन्दर सुलगती रही। इस अमीरी के ठाठ में ज़हर का बीज अंकुरित होकर वृक्ष हो गया और फूल पड़कर यह फल लगा कि बेगम ने एक दिन पूरन की माता की तरह अत्यधिक बुद्धिमान वज़ीर को महलों में बुलाकर पल्ले से पकड़ लिया। उसके पति के नमक पर पले नेक वज़ीर ने हाथ जोड़े परन्तु व्यर्थ। बेगम ने मिन्नतें कीं, दुहाई दी, हाथ जोड़े, लालच दिखाया, धमकाया परन्तु वज़ीर ने एक न मानी। हुक्म मोड़ने को बेगम ने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा। उसी समय नौकरानियों को बुलाकर वज़ीर को हवाले कर दिया और तड़ा तड़ जूतों की मार शुरू हो गयी। बेचारे का जूतियों से सिर फट गया,

शरीर की चमड़ी उधड़ गयी और प्राण सिसक-सिसक कर सुन्दर शरीर को छोड़ गए[१] यह घटना हुई तो महलों मे थी, परन्तु इस भयानक ज़ुल्म की ख़बर दरबारियों तक पहुँच गयी, सभी घर बैठ गए, दरबार में आना छोड़ दिया, और अन्दर ही अन्दर सिंहों को क़ह दिया कि मन-भाती मौजें करो, कोई भड़ुआ रोकने वाला नहीं है, उधर यह राय बनायी कि सारा हाल दिल्ली लिखकर भेज दें।

बाहर तो बेगम का यह सुकृत नाम घुला और अंदर उसको सहारा देने वाली शील कौर के साथ बिगड़ गयी। उसका कारण यह हुआ कि बिजय सिंह सम्मन बुर्ज के सुखों को छोड़कर अपने भाइयों में पहुँचना चाहता था और बेगम को बिजय सिंह का जाना ऐसे प्रतीत होता था जैसे शीशे में से किसी जड़ित सुन्दर मूर्ति को निकालना हो। जैसे-जैसे सिंह परिवार चलने के लिए तैयार हो वैसे वैसे बेगम की मेहरबानियाँ बढ़ने लगीं रुपया पैसा हाज़िर बत्तीस दाँतों में से जो निकले सो हाज़िर यहाँ तक कि बेगम सिंह जी के चेहरे से पहचानने की कोशिश करे कि इनके चित्त में क्या है और वह झट पूरा कर दे, बेगम के दिल की लग्न बिजय सिंह जी की ओर उलट रही थी, वह यहाँ तक बढ़ी कि बेगम को किसी का साथ न भाये, जब सिंह जी के पास बैठे तो मन लगा रहे। कई बार आधी-आधी रात तक बैठे राजसी चर्चाएँ होती रहतीं। परन्तु स्वच्छ मन वाले सिंह जी को किले में रहना ऐसे बुरा लगे जैसे किसी बुलबुल को हीरों से जड़ित पिंजरा। जब सभी यत्न निष्फल हो गए

---

१. तवारीख खालसा और पंथ प्रकाश में लिखा है कि भिखारी खाँ इंकार करने की वजह से मारा गया। कैप्टन कनिंघम नोट में लिखते हैं कि भिखारी खाँ बेगम के साथ बुरा सम्बन्ध रखता था। मुहम्मद लतीफ ने लिखा है कि भिखारी खाँ ने बेगम को वह ना-उम्मीदी दी थी जो औरत ज़ात ने कभी माफ नहीं की।

तो एक दिन मुँह अँधेरे सिंह जी परिवार सहित चुप चाप चल पड़े। जब दरवाजे के पास पहुँचे तो पहरेदारों ने रोका कि आपको बाहर जाने की आज्ञा नहीं और तुरन्त बेगम को ख़बर पहुँचायी। बेगम आप आकर वापिस ले गयी, अलग बिठाकर मिन्नतें कर कर के समझाया। अब सिंह जी दोहरे फँसे साँप के मुँह में छछुन्दर, खाये तो कुष्ठ, छोड़े तो अन्धा, करतार की मर्जी जानकर चार दिन सुस्ताने कर निकालने का संकल्प कर के टिक गए।

सिंह जी को तो और कोई शक न हुआ, वे राजसी मुश्किलों को ही बेगम द्वारा अटकाने का कारण समझते रहे, परन्तु शील कौर, जो सारे रंग ढंग को गहरी नज़र से देखती थी, अंदर ही अंदर डूबने लग पड़ी कहीं मेरे पति की दशा भी भिखारी खाँ वाली न हो। वह बेचारी न तो डरती कुछ बेगम को कह सके और न ही निकल चलने का उपाय दिखायी दे। कई दिन सोचने में लगी रही आखिरकार पति के आगे अपनी चिन्ता व्यक्त की।

सिंह जी ने सुनकर त्यौरी चढ़ायी, चुप हो गए, फिर दाँतों में ओंठ दबाये, फिर धीरे-धीरे सिर हिलाकर बोले—मैं भी सोचता था परन्तु मैं इस बात को अपवित्र जानकर अपने दिल में जगह नहीं लेने देता था। वैसे मैं इसी यत्न में रहा हूँ कि कैसे यहाँ से निकल जायें, यहाँ रहना ठीक नहीं, भाइयों में जा पहुँचें, सेवा का समय फिर आ रहा है परन्तु इस ओर मैंने विचारों को समय नहीं दिया। मेरा मन कहे कि किसी को दोष देना ठीक नहीं, किसी के दिल का क्या पता है, मैं अगर उसके दिल को खोटा समझूँ और बुरे संकल्प वाला मानूँ तो अपने मन को बिना पक्के सबूत के बदी (बुराई) के बगीचे की सैर का समय देता हूँ, इसलिए इस ख्याल को मन की दहलीजों के अन्दर पैर नहीं रखने दिया। आज आपके कहने पर मुझे

भी संदेह हो गया है कि बेगम का ख्याल इस तरह का है। आपकी दलील ठीक है और आपके सबूत विश्वास करने योग्य हैं, परन्तु मैं क्या करूँ? बहुत सोचा है परन्तु रास्ता नहीं निकलता। हाँ, एक योजना है कि भगवान भरोसे उत्तर पूर्व दिशा की ओर से किले का परकोटा कूद चलें, अच्छा हो अगर ठीक-ठाक निकल चलें। शील कौर बोली सलाह अच्छी है, परन्तु उतरने का कोई और उपाय करो।

बिजय सिंह बोला–मैंने योजना बनाई तो है परन्तु अगर निभ जाये तो। वह ऐसे है कि एक रस्सी अथवा एक पगड़ी के थान द्वारा आपको बाँधकर मैं बारी-बारी से नीचे लटका दूँगा थोड़ी सी दूरी पर एक ऊँचा पीपल का वृक्ष है, आप उस पर चढ़कर दूसरा सिरा कसकर पीपल की ऊपर की टहनी के साथ बाँध देना, जो सिरा मेरे हाथ में होगा उसके सहारे से मैं ऊपर आ जाऊँगा।[१]

पति-पत्नी ने यह योजना बनाई। रात को बिजय सिंह समय भाँपने लगा परन्तु वश न चला, दूसरी रात पहरेदारों की नज़रों से न बच सके, तीसरे दिन सोचा कि पिछली रात से पहली रात अच्छी थी, क्योंकि इधर पहले प्रहर के बाद पहरा लगता है, इसलिए उससे पहले ही निकल चलें। बात क्या, इसी तरह किया, जब वहाँ पहुँचे तब अपने काम में जुट गए। पहले शील कौर की कमर के साथ कपड़ा बाँधा और उसी को उसने हाथ में पकड़ लिया और परकोटे पर चढ़ गयी। बिजय सिंह दीवार को पैर की रोक लगाकर खड़ा हो गया और शील कौर कूदने ही लगी थी कि किसी हाथ ने अचानक बाजू आ पकड़ी, और कहा "बहिन जी! इस तरह छोड़कर भाग जाते हैं?" तीनों बेचारे हक्के बक्के हो गए, सारी सलाह धरी की

१. यह वह ठिकाना था जहाँ आजकल भाई वस्ती राम की समाधि है।

धरी रह गयी, शर्मिन्दा होकर वापिस चल पड़े और फिर से अपने दालान में आ बैठे।

बेगम–अब बोलो तो सही, चुप क्यों हो गए? मैं आपके साथ गुस्से तो नहीं। मैं जानती हूँ, आप पल्ला छुड़ाते हो मैंने तो अपना सहारा आपको माना हुआ है और आप इस तरह पीछा छुड़ा रहे हो। सत्य है–आवश्यकता पड़ने पर कोई साथी नहीं बनता।

शील कौर–आप कहते तो ठीक हो, परन्तु हम तो आपसे कन्नी नहीं कतराते, बल्कि आप हमें स्वयं निकालते हो।

बेगम–वह कैसे?

शील कौर–यह पति जी बतायेंगे।

बेगम–क्यों महाराज (ठंडी साँस भरकर) कभी हो सकता है कि कोई आप अपने प्राणों को अपने से दूर करे?

बिजय सिंह–सत्य है, परन्तु कई अफीम खा ही लेते हैं न।

बेगम–बुद्धि में नहीं, किसी निराशा में, परन्तु हाँ (लम्बी साँस लेकर) कैसे?

बिजय सिंह–आप जो सलाह हमसे लेते हो मानते नहीं, अपनी मर्ज़ी करते हो। हम चाहते हैं कि आप अच्छे लोगों को पास रखें, अपने धर्म के काम पूरे करें, वज़ीरों और उमरावों के साथ न बिगाड़ें ; आप नहीं मानते, न मानने का फल बुरा लगना है, इसलिए फिर किनारा करना ही अच्छा है।

बेगम–हाँ...हैं...हाँ, परन्तु अब जो कहोगे, होगा। कोई और कारण तो नहीं?

बिजय सिंह–और भी हैं, हम नज़रबंद होकर नहीं रहना चाहते, हम चाहते हैं कि हम अपने दल में चले जायें, जब कभी आप चाहें आपको मिलते-मिलाते रहें, अगर आपको हमारी मदद

की कोई उचित आवश्यकता पड़े वह पूरी करें परन्तु तब अगर आप सिक्खों के साथ भी सम्बन्ध ठीक करो।

बेगम–मैं आपको आँखों से ओझल नहीं कर सकती तो दलों में कैसे जाने दूँ? "नहावण गए न बाहुड़े जोगी किस दे मित्त" क्या अच्छा हो कि आप सिक्खों का ख्याल छोड़कर मेरे साथ इकमिक हो जाओ, आप बहुत अच्छे वज़ीर बन सकोगे, फिर जो करोगे आप करोगे, मैं हुक्म भी नहीं दूँगी, परन्तु मुसलमान हुए बिना यह बात कठिन है, क्योंकि सिर पर दुर्रानी का डंडा है और दिल्ली की झिड़की है।

बिजय सिंह–वाह वाह! आप हमें मुसलमान बनाते हो। आप तो कभी नमाज़ नहीं पढ़ी, रोज़ा नहीं रखा, हमें कैसे बनाओगे? दूसरे अगर आप की यही मर्जी है, तब हमें बहुत जल्दी अपने प्राणों पर खेलना पड़ेगा।

बेगम–तौबा, तौबा! अच्छी बातें मुँह से निकालो। मैंने तो सहज स्वाभाविक बात की है, आपने क्यों गुस्सा कर लिया? आपको जो बात न अच्छी लगे वह मैं कभी नहीं करूँगी।

बिजय सिंह–क्या आप यह वादा करते हो?

बेगम–हाँ, मैं वादा करती हूँ जो आपको नहीं भायेगा मैं नहीं करूँगी।

बिजय सिंह–बहुत अच्छा!

बेगम–परन्तु आप भी वादा करो कि जाओगे नहीं।

बिजय सिंह–मैं वादा करता हूँ कि जब तक आप वादा निभाओगे मैं भी निभाऊँगा, परन्तु जब आप वादा तोड़ोगे मैं फिर वादे में बँधा नहीं रहूँगा।

बेगम–बहुत अच्छा! आप फिक्र न करें, मैं तो हर समय फिक्र में हूँ कि आपके लिए सभी सुख इकट्ठे करती रहूँ। आपके दिल को हल्की सी ठोकर लगे तो मेरा दिल शीशे की तरह चूर हो जाता है। इस समय आपके सिवाय मेरा कौन है? सभी स्थानों पर आप ही हो। आपको पल्ला छुड़ाकर खिसकते देखकर मेरा मन दुखी हो गया हो गया है परन्तु अब आप के वचन देने से दिल सुखी हो गया है।

यह कहकर शीला के गले मिली। भुजंगी को गले से लगाया और उसका मुँह चूमकर सिंह जी के कंधे पर हाथ रखकर उठी और खाना खाने चली गयी।

शील कौर और बिजय सिंह कुछ अपनी मुश्किल पर घबराये, फिर हँसे कि देखें अब क्या बनता है? शील कौर ने कहा कि आप ने जो वादा किया है हमें फँसा न दे।

बिजय सिंह–फँसे तो पड़े हैं, निकलने की सूरत ही अभी नहीं और आज से बेगम ने हमारे ऊपर पहरा भी और कड़ा रखवा देना है। वादा, मेरा वादा कच्चा नहीं, क्योंकि उससे अपना नहीं निभेगा। हारना उसी ने है, क्योंकि वह अकाल के घर में नहीं, राज्यमद सिर को चढ़ रहा है। परन्तु हमें सदा तैयार रहना चाहिए झेलने के लिए क्योंकि इंसान के सिर पर असहनीय चोटें पड़ती हैं। झेलना और न डगमगाना ही इंसानी ताकत है।

–कांड १८–

एक दिन प्रात:काल के समय अभी चार नहीं बजे थे, भाई बिजय सिंह जी महलों के पिछवाड़े बाग में बैठे परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो रहे थे। पिछली रात का चन्द्रमा वृद्धावस्था की दाढ़ी जैसे धरती के चेहरे को नूर दे रहा था। तारों की छिटकी रात और भी शोभा फैला रही थी, भीगी ठंड शरीर को ऐसा आनन्द दे रही थी, जैसे गुलाब की पंखुड़ियों को ओस।

बेगम सारी रात नहीं सोयी, कभी छत पर कभी नीचे, कभी अन्दर कभी छज्जे पर मछली की तरह तड़पती घूमती रही। तप वाले को जैसे ठंडक का स्वाद नहीं, वैसे ही भीगी-भीगी रात तपते चित्त के लिए ठंड नहीं थी फैला रही। कभी रोती, कभी हँसती, कभी समझदारी करती, कभी विवश हो जाती। कभी मन से बातें करने लगती–

''हे मन! आ समझ, देख....। आगे देश में भिखारी खाँ के सम्बन्ध में क्या उपहासास्पद स्थिति हुई है, औरत का क्या है? चाहे सौ राजगद्दी पर बैठे फिर औरत, रत्ती भर शक पड़ा नहीं औरत का यश गया नहीं। बेचारी रज़िया बेगम का हाल तुझे मालूम ही है!

देखो! मैं किस दुख के पीछे पड़ी हूँ। सारा पंजाब मेरे हुक्म में और मेरा अपना मन मेरे नियन्त्रण से बाहर! हाय! मेरे कारनामे पुस्तकों में लिखे जायेंगे, सदियाँ बीत जायेंगी, मेरी हड्डियाँ भी कब्र में मिट्टी हो जायेंगी, परन्तु मेरे नाम से वज़ीर वाला धब्बा नहीं धुलेगा। जब कहीं मेरा नाम आयेगा, यह ज़िक्र छिड़ जायेगा। अब तक विवश सिक्ख मेरे फंदे में है, वह निर्दोष है, वह यहाँ कैदी है ; मेरे हुक्म के फंदे में है, उसका नाम क्या बिगड़ना है? मर्द सौ बुराई करे अँधी जनता कुछ नहीं कहती, औरत पर झूठा शक भी पड़ जाये तो औरत की मिट्‌टी उड़ जाती है। तभी तो कहते हैं कि औरतों को इज्ज़त बहुत संभालनी चाहिए, औरत को ऊँची आँख से किसी ओर भी नहीं देखना चाहिए। पर इस बात के लिए मन काबू होना चाहिए, अच्छा ठीक है। परन्तु पता नहीं कल किस का है? भविष्य किसने देखा है? कहीं ऐसा न हो कि मैं मर जाऊँ, यह राज-पाट है, परन्तु अकेली हूँ, अच्छा चलो, सिंह जी के साथ बातचीत तो करें। उस भोले को तो ख़बर ही नहीं। कितना नेक है, समझदार है, बंदगी वाला है और चन्द्रमा (जैसा सुन्दर) है।"

इस तरह के ख्यालों में बेगम रात बिताये, परन्तु बीते न, आखिर एक उबाल में उठकर उधर गयी, जिधर शील जी थे। दरारों में से देखा कि शील कौर और बालक बैठे पाठ कर रहे हैं, परन्तु बिजय सिंह नहीं है। अब बेगम दूसरे छज्जे पर गयी, नज़र बाग की ओर दौड़ाई तो संगमरमर की शिला पर चाँदनी वाला चाँद चमकता दिखाई दिया। बेगम तुरन्त वहाँ पहुँची। जब बेगम ने सिंह जी के ध्यान में लीन चेहरे का दर्शन किया तो ठंड सी पड़ गयी और घबराने वाले सभी ख्याल उड़ से गए। वासना दूर हो गयी और विवशता में सिर झुक गया। सिंह जी ने आँखें खोलीं और कहा : आप सिर न झुकाओ, बैठ जाओ।

बेगम—आप मुझे इस समय देखकर हैरान हो गये होंगे, परन्तु जैसे परमेश्वर के प्यार ने आपको सोने नहीं दिया वैसे ही आपके प्यार ने मुझे। अब एक प्रार्थना सुन लीजिए। मेरे चित्त में आपका प्यार पड़ गया है, मैंने सभी यत्न उसे निकालने के किए, परन्तु नहीं निकलता। अब कृपा करके आप मुझसे विवाह कर लीजिए, आप मुसलमान हो जाइये तो बहुत खुशी, नहीं तो ऐसे ही रहिये, परन्तु निकाह पढ़वा लीजिए, निकाह..... परन्तु ज़रा छुपी रहे बात।

सिंह जी—हे प्रजा माता! दूरन्देशी से काम लें। मैं विवाहित हूँ, आपको मालूम है। फिर आपके सिर पर सारे देश का बंदोबस्त है, आपको प्रजा की रक्षा का ध्यान रखना चाहिए। देश का बोझ आपकी गर्दन पर है, इसको निभाने के लिए भलाई और परमेश्वर का भय चाहिए। धर्म.... बड़ी वस्तु है।

बेगम—सिंह जी! मैंने आपको कोई बात धर्म के विरुद्ध नहीं कही। मैंने तो विवाह के लिए कहा है। विवाह तो पवित्र रिश्ता है।

सिंह जी–सत्य है, विवाह केवल बुरी वासना के लिए नहीं होता, विवाह तो इस बात का नाम है कि दो अविवाहित जीव एक दूसरे के दुख सुख के भागीदार होकर सच्ची मित्रता और प्रेम भाव से सांसारिक सफर तय करने का धर्म करते हैं, परन्तु मैं तो पहले ही विवाहित हूँ। फिर सोचें तो सही मुझसे विवाह करके आपका राजपाट बच सकता है? मुसलमान मैंने बनना नहीं चाहे ज़मीन आसमान एक हो जायें। अब बतायें इस बहाव में से क्या गुण निकलेगा? मेरा कहा मानें तो आप कुरान के अर्थ सुना करें, अगर चाहें तो मैं आपको गुरु जी की वाणी सुनाया करूँ।

बेगम–राजपाट की परवाह नहीं, मैंने जो स्वयं आपको कहा है प्रेम की कोई गहरायी मेरे चित्त में भी होगी न? जिसने मुझे इतना हौंसला दिया है, नहीं तो औरत मर जाये, परन्तु विवाह के लिए विनती कभी न करे, पाक मुहब्बत तो धर्म है।

सिंह–शील कौर तो आपकी धर्म की बहिन है, क्या यह धर्म है? भगवान आपका भला करे, हे देश की रानी साहिबा! अपने राजपाट की चिन्ता करें।

बेगम–बहुत सोच चुकी, मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। देश काबू रखने के बहुत हथकंडे जानती हूँ। एक आप मेरा कहा न मोड़ें।

सिंह जी–मैं यह संयोग नहीं कर सकता, मैं सिंह हूँ।

बेगम–मैं आपकी अपनी बनना चाहती हूँ, मैंने परायी बनकर तो कुछ नहीं कहा। आप क्यों और धुन में चले जाते हैं? मैं विवाह की इच्छा रखती हूँ, विवाह पाक (पवित्र) रिश्ता है। केवल चोरी रखना है।

सिंह जी–मेरी स्त्री है, मैं एक को अपनी बना चुका हूँ।

बेगम–हमारे यहाँ तो चार तक की आज्ञा है।

सिंह जी–मैं एक से अधिक को अपने लिए अच्छा नहीं मानता। प्यार है और पवित्र है तो आप मुझे अपना पुत्र समझ लें। पुत्र बनाकर आप मेरे साथ प्यार कर सकती हैं और मैं आपकी सेवा कर सकता हूँ। प्यार तो ऐसे भी निभ सकता है।

बेगम–इन बहानों से कुछ नहीं बनेगा। मेरे मन ने बहुत सोच लिया है, बहुत विचार कर लिया है, अब दिमाग और अधिक चिन्ता का बोझ नहीं उठा सकता।

यह कहते ही बेगम की आँखें लाल हो गयीं और शरीर काँप उठा। बिजय सिंह का हाथ पकड़कर दबा दिया, कुछ बोली, परन्तु गले से आवाज़ नहीं निकली। बिजय सिंह ने धीमे से हाथ छुड़ाना चाहा परन्तु हाथ न छूट सका। कुछ देर सिंह जी आँखें बंद कर बैठे रहे परन्तु फिर एक ज़ोर का झटका देकर हाथ छुड़ाकर चले गये। कुछ देर में सूर्य भी चढ़ आया, उसकी किरणें बेगम के जोश उतर जाने के कारण, पीले और कमज़ोर हुए चेहरे पर पड़कर उसकी एक पागलपन की शक्ल बनाने लग पड़ीं। अंतरंग सखियाँ जो बेगम को अन्दर न पाकर खोज रही थीं, बाग में पहुँची और बहुत फुर्ती से उठाकर अन्दर ले गयीं। अन्दर पलंग पर लिटाकर सेविकाओं ने गुलाब और केवड़े के छींटे मारकर होश लौटायी। नौकरानियों ने फिर शरीर पर चन्दन और फुलेल की मालिश करके सिर सहित ठंडे जल से स्नान करवाया। अँधेरी चली गयी और बाद में बारिश बस जाने पर भी जैसे कोई कोई झोंका तीखी हवा का आ

जाता है, वैसे बेगम ठंडी आहें किसी-किसी समय लेती रही। दरबार में जहाँ पर्दे में बैठकर उमरावों को मिलती थी, आज नहीं गयी। महलों में सिर दर्द की खबर सुनी गयी। हकीम हाज़िर हुए, किसी चतुर को पता न लगा कि बेगम के दिल में दर्द है कि सिर में। कोई प्रहर दिन चढ़ने के बाद बेगम को नींद आ गयी। शुक्र है कि बेचारी वासनाएँ जो इसके तप्त हृदय में भट्ठी के दानों की तरह तड़फड़ा रही थीं, शांत हुईं और उनको आराम से बैठना मिला। सूरज डूबते समय नींद खुली। बेगम वैसे तो ठीक थी, परन्तु कमज़ोर हो गयी, जैसे कोई बुखार के रोग से उठता है।

-कांड १९-

बेगम को आराम से सोना, बेफिक्री से खाना, लापरवाही से हँसना सब भूल गया। दिल का अहंकार और अकड़ तो भिखारी खाँ वाला दंड देने के लिए कभी-कभी उमड़ पड़ती, परन्तु यहाँ गहरा प्यार था, इसलिए वह जोश अपने आप ठंडा पड़ जाता। वैसे भी पहले भिखारी खाँ को मरवा देने से ढेर बदनामी हो चुकी थी, इस बात से भी डरती अब जोड़ तोड़ और टेढ़ी चालों की सोच में रहती थी। अंत, बेगम ने यह चाल चली कि शील कौर को एक तंग कोठरी में चुप चाप कैद कर दिया। छोटा बालक, माँ का समय कुसमय का सहायक साथ ही कैद हुआ।

कोठरी के बाहर पहरा रहता है। एक दिन सुबह पाठ के बाद शील कौर के कमरे में एक सेविका आयी, जिसके हाथ में दो सुन्दर कटोरे थे; शील कौर के आगे रखकर बोली :-कि ये दोनों आपकी भेंट, एक आप पी लीजिए और एक बरखुरदार को पिला दीजिए।

शीला–इसमें क्या है?

सेविका–हुक्म तो नहीं कि बताऊँ परन्तु आपके अहसानों तले दबी सिर उठाने लायक नहीं ; बताती हूँ तो दोष है, नहीं बताती तो कृतघ्न बनती हूँ। हाय! मैं बताए बिना रह भी नहीं सकती और छिपी रहने वाली बात भी नहीं। बीबी जी! इसमें ज़हर है; जो आपके लिए आपके पति ने भेजा है।

शीला–कभी नहीं, प्यारे पति जी की ओर से अगर यह भेंट हो तो मेरे धन्य भाग्य! परन्तु पति जी की भेजी हुई यह चीज़ नहीं है। मेरा और पति जी का आत्मिक संयोग है, मेरा पति यह कभी नहीं कर सकता, वह सच्चा सिंह है, सच्चे सिंह सदैव सच्चे पति हुआ करते हैं।

सेविका–(ठिठक कर)–बीबी जी! तुम तो बड़ी कोई दिलों को जानने वाली हो। मैं तुमसे सत्य नहीं छिपा सकती। यह बेगम की चालाकी है, आपके पति का दोष नहीं। पति आपके ने अभी तक बेगम का हुक्म नहीं माना। दुनिया का कोई लालच नहीं जो बेगम ने उनको न दिखाया हो, परन्तु उनपर कुछ असर नहीं हुआ। जिस समय से बेगम ने आपसे उनको अलग किया है, उस दिन से अनेक सेविकाएँ हर वक्त उनके आस-पास रहतीं और उनको समझाती हैं, परन्तु उन्होंने भी मन में कुछ तय कर रखा लगता है क्योंकि गंभीर हाथी के चारों ओर उड़ती मक्खियों की तरह उनको देखते हैं। कल मैंने उनको यह कहते सुना था कि हे बेगम! तुमने अपना प्रण तोड़ा है अब हम भी चले जायेंगे परन्तु बेगम पैरों पर पानी नहीं पड़ने देती। वह कहती है कि तुम्हारा पिता चूहड़मल्ल तुम्हारी पत्नी को ले गया है परन्तु वे विश्वास नहीं करते।

शीला–अच्छा जो करतार को अच्छा लगे। अकाल पुरुष उनको गर्म हवा ना लगने दे, मैं तो परमात्मा जाने न्योछावर की गयी उनके चरणों पर।

सेविका–शाबाश आपके जन्म के और आपके धर्म के, पतिव्रता होने के! आप तो कोई देवता हो। मूर्ख बेगम आपकी वास्तविकता को नहीं समझती।

भुजंगी–अच्छा अगर हम न पीयें तो।

सेविका–फिर कत्ल कर दिये जाओगे। यह बेगम फैसला कर चुकी है।

शीला–सत्य वचन, (पुत्र की ओर) बरखुरदार! एक दिन मरना है मेरा तुम्हारा सिंह जी के साथ इस किले में से जीवित निकल पाना अनहोनी बात है, तुम्हारे पिता का अकेले निकल जाना कुछ आसान है। वे सिंह हैं, किले के उस दिन वाले परकोटे से कूद कर भी जा सकते हैं, परन्तु मैं औरत तुम बालक, हमारा निकलना मुश्किल है। दूसरी बात यह है कि "तुम्हारे पिता धर्म हारें" यह भी होने वाली बात नहीं है। कोई ऐसी प्रेरणा नहीं है जो उनके हृदय को प्रेरित कर सके। उनको अगर सिर्फ अपनी ही चिन्ता हो तब प्राण और धर्म दोनों को बचा लेना उनके लिए आसान होगा, परन्तु मेरा साथ में होना उनके प्राणों को अवश्य ले डूबेगा, तब तो भला है कि मैं मर जाऊँ और स्वामी जी स्वतंत्र होकर अपना आप बचा लें। तुम्हारे लिए, मैं अंतड़ियों की ओर देखूँ तो जीना ही अच्छा है, परन्तु अगर बुद्धि की बात मानूँ तो तुम्हारा मेरे साथ, मेरे बच्चे! चलना ही अच्छा है। क्योंकि जब मैं मर गयी तुम्हारे पिता के पास तुम्हें इन्होंने पहुँचने नहीं देना, और कई तरह की धमकियाँ और लालच तुम्हें देंगे, तुम्हारी आयु कम है, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा चित्त डगमगा जाये (आकर्षित हो जाये), तुम कोई भूल कर बैठो और खालसा सुने तब मेरी कोख को सारा पंथ धिक्कारे और तुम्हारी आत्मा हमसे बिछुड़ जाये। चाहे मैं जानती हूँ कि तुम शेर बच्चे हो डगमगाने वाले

नहीं, तुम्हारा लहू पवित्र और दिल बलशाली है परन्तु अवस्था छोटी होने के कारण दिल में तसल्ली नहीं होती। इसलिए प्यारे लाल! चल अब करतार के चरण कमलों में पहुँचें। दुनिया देख ली प्याज के छिलके की तरह है, इसके अन्दर कुछ नहीं।

माँ का उपदेश बच्चे के दिल में घर कर गया। सेविका पास बैठी टुकुर-टुकुर ताक रही है। माँ पुत्र ने गट-गट कर प्याले पी लिए, सेविका के चरणों को छूकर कहा कि पति जी को किसी तरह संदेश पहुँचा देना कि हम अब संसार में नहीं हैं और आप अपना आप लेकर खिसक जायें। सेविका हक्की बक्की पत्थर की मूर्ति बनी दोनों के चरणों पर माथा टेककर विदा हुई और माँ पुत्र पाठ करने लग पड़े।

क्षणोपरान्त बेगम आ पहुँची। शीला ने एक तिनका आगे कर के कहा–बहिन जी! यहाँ और कुछ नहीं जो आपको बैठने के लिए दूँ। बैठिए, मेरे सिर माथे, आपका स्वागत है, धन्य भाग्य आपने दर्शन दिए।

बेगम–शील कौर! तुम बहुत ठंडा घड़ा हो, मैंने सुना है कि तुम्हारे पति ने तुम्हें ज़हर दे दी है, मेरे तो हाथों के तोते उड़ गए हैं। दौड़ी आई हूँ किस बात पर तुम्हारे साथ धोखा किया है? मुझे तो तुम्हारी कैद का पता भी अभी लगा है, मेरे आगे बिजय सिंह टाल-मटोल करता रहा है, मैं पूछूँ कहाँ है तब कह दे कि शहर गयी है। मैं भोली क्या जानूँ? आज पता लगा कि उसका दिल एक सेविका ने भरमा लिया है और उसके बदले में तुम्हें मार रहा है। परन्तु तुम घबराना नहीं, मैंने हकीम को बुलवाया है, अभी तुम्हारा इलाज करता है। (आँखों में आँसू) प्यारी बहिन! तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होने दूँगी।

शील कौर–बहिन जी! हकीमों की ज़रूरत नहीं, न ही पति जी ने मुझे ज़हर दी है, यह फल तो मेरे ही खोटे कर्मों का है। यह प्रभु की मर्ज़ी है जो खुशी से झेलनी है। आपको मैंने बहिन कहा था, सो शुक्र है कि अंत तक मेरी ओर से निभ गया। अगर मुझसे कोई भूल चूक हुई हो तो माफ कर देनी।

बेगम–बहिन जी! मेरा कौन है (आँखों में आँसू) तुम मेरी ओर थीं, तुम चली गयीं तो मैं क्या करूँगी? मेरी माँ तुम थीं, बहिन तुम थीं, दुखों का दर्द समझने वाली तुम थीं, गमों को बाँटने वाली तुम थीं। (हाथ जोड़कर) बहिन! मुझे यत्न कर लेने दो, इलाज करवा लेने दो।

शीला–बहिन जी! आप आराम करें। मेरा जी घबरा रहा है, अभी प्राणों में तड़प लगने वाली है, आप देखकर घबरायेंगी, मेरा आप पर कोई गिला नहीं, मेरी ओर से चित्त को ठंडा रखें, किसी प्रकार का रंज मेरे चित्त में नहीं है, अगर होता भी तो मैं माफ कर देती आप जायें, मेरे पति पर कृपा करना और उसको इस किले में से छुटकारा दे देना, बस! इतनी इच्छा है अगर आप पूर्ण करें तो अच्छा।

इसी समय एक सिखायी हुई नौकरानी दौड़ी-दौड़ी आई और घबरायी हुई बोली:– 'बेगम जी! अँधेर हो गया।' यह सुनकर बेगम हड़बड़ी की मारी चली गयी। उधर माँ पुत्र को ज़ोर से कै शुरू हो गयीं। अँतड़ियाँ तोड़ तोड़ ओझरी को उलटा कर देने वाली लगातार आती कै ने ज़हर की बहुत सारी मात्रा निकाल दी। परन्तु कमज़ोरी और बेहाशी ने दोनों को ऐसा कर दिया कि जैसे कोई जीवित नहीं है। सारा दिन बेसुध पड़े बीत गयी, संध्या हुई तो बेगम के आदेशानुसार लाशें दरिया में फेंकने के लिए भिजवायीं। परन्तु

फेंकने वालों ने कुछ दूर से शोर सुनकर और डर कर कि कहीं कोई सिक्ख दस्ता न आ रहा हो, जल्दी से किले के बाहर ऊपर की ओर उजाड़ में पवित्र शरीर धीमे से रख दिए और आप भाग गए। बेगम के विचार में वे मर चुके थे और उठाने वालों ने भी ध्यान नहीं दिया था। अनजाने में वे अँधेरी रात में लाशें समझकर उजाड़ में रख आये, जहाँ वे पड़ी अंत में मानों अंत हो रही थीं। मखमली सेजों पर लेटने वाले शरीर कड़ी ज़मीन पर पड़े हुए थे। परिवारों से बिछुड़े हुए धर्मात्मा एक-अकेले वन पशुओं की लाशों की तरह रखे हुए हैं। आकाश में तारा मण्डल गहरी नज़र लगाकर सच्चे धर्मात्माओं की ओर देख रहा है कि शायद हमारी प्राण देने वाली किरणों से ज़िन्दगी के तन्तु बोल उठें। मद्धम-मद्धम पवन उनके शरीरों पर सारंगी के गज की तरह बह रही है कि शायद जीवन की तारें किसी रगड़ द्वारा अपनी सरगम अलापने लग जायें। कुदरत धर्मात्माओं के साथ दर्द बाँट रही है, परन्तु कोई जीवित व्यक्ति ईश्वर का तरस खाकर विश्वास की यज्ञवेदी पर ज़ख्मी हुए जीवों की मदद नहीं कर रहा।

किले के अंदर देखें तो होनी और ही खेल रचाये बैठी है। सजे हुए कमरे में एक मोर पंख की उन्नत पलंग पर बिजय सिंह जी विराजमान सुन्दर सेविकाओं के झुण्ड में बैठे ऐसे सज रहे हैं; जैसे नक्षत्र समुदाय में कोई तारा। ये बेगम की अंतरंग सखियाँ हैं, जो बिजय सिंह को समझा रही हैं, परन्तु सब की शिक्षाएँ चिकने घड़े पर पानी जैसा असर कर रही हैं। कोई रात के सवा पहर बीते तक समझा बुझा कर सखियाँ विदा हुईं। अब बेगम स्वयं आयी 'सिंह जी अब तो दिल की लगाम घुमाइए। अगर मुसलमान बन जायें तो आपको पंजाब का हाकिम बना दूँ, यह मेरे बायें हाथ का

खेल है। अपने पर तरस करें, यह सुन्दरता वन के फूलों की तरह ऐसे ही न सड़ जाये। रचयिता ने किन सुन्दर हाथों द्वारा तुम्हारे शरीर की रचना की है, मेरे विचार में जब से संसार रचा जाने लगा है, तब से जो-जो सूरत रचयिता ने रची, उसकी सुन्दरता का थोड़ा-थोड़ा नमूना अलग रखता रहा है, उन सारे संभालकर रखे सुन्दरता के नमूनों को इकट्ठा करके उसने एक पुतला बनाकर बिजय सिंह नाम रखकर संसार में भेज दिया है। हे अपना बुरा करने वाले पत्थर दिल शहज़ादे! कुछ बोलो तो सही।'

सिंह जी–हे प्रजा माता! तुम्हारे संकल्प मृगतृष्णा के जल की तरह, जहाँ से कुछ नहीं बनेगा, वहाँ से सुखों की आशा कर रहे हैं, तुम जिन बातों को सुख रूप जानती हो, ये सब दुख रूप हैं। जो इस समय मन को मोड़ना है वह बहुत मुश्किल तो है परन्तु फल बहुत मीठा रखता है, और जो मन के पीछे लगना है, यह अनेक कष्टों में डाल देगा।

''सुखु मागत दुखु आगै आवै।।
सो सुखु हमहु ना मांगिया भावै।।''

धतूरे का एक बीज बोयें तो कैसा सुन्दर पौधा उगता है, कैसे सुन्दर फल लगते हैं। पर हाय! कितने अनगिनत ज़हर के बीज उसमें पैदा होते हैं और कैसा कठोर विष उसमें से फैलता है। जड़ें, पत्ते, टहनियाँ, फूल सब में विष भरा होता है फिर एक बार ही बस नहीं, हर बार विष के फल लगते हैं, मानो उस पौधे का एक स्रोत बन जाता है, जिसमें से सदा विष की नदी बहती रहती है।

बुरी वासनाओं का रूप मोह से सुन्दर लगता है परन्तु उनका पालन करना साँप का विष होता है। पतंगा दीपक की सुन्दरता पर मोहित हो जाता है, दूर रहे तो खैर, जब वासना अधीन होकर

नज़दीक जाता है तो पंख जला कर गिरता है और तड़प तड़प कर मरता है। बेगम! वासना अधीन होकर चलने ने बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, औलिए गिराए, राजाओं के राज बरबाद किए हैं, फकीरों की फकीरियाँ मिट्टी में मिल गयीं, तेजस्वियों के तेज इसने छीने हैं। राजपाट को पाकर अपने पैरों पर मज़बूत होकर खड़े होइए। भिखारी खाँ वाला अनुभव गुरु बनना चाहिए।

बेगम–हे कड़े मोठ[१]! कठोर पत्थर! मुल्लाओं की तरह उपदेश न सुना; ये दिन वापिस नहीं आयेंगे। बाद में यही पछतावा हिस्से में रह जाता है कि ज़िन्दगी के सुन्दर सुन्दर दिन धर्म के भय के कारण गँवा दिए।

सिंह–हे प्रजा की माता! काल व्यतीत हो रहा है अगर धर्म में बीते तब भी अगर अधर्म में बीते तब भी, मन की मौजें मनाने में बीते तब भी, न मनाने में बीते तब भी, हाँ काल ने बेपरवाह अपने नियमों में चलते जाना है। बाद में तो अच्छे कर्मों की खुशी और बल अपने पास रह जाता है अथवा बुरे कर्मों का पछतावा और कमज़ोरी। काल के रथ में अच्छे बुरे दो पहिये हैं। इन पहियों की दो लकीरें पड़ती जाती हैं, एक पछतावा, एक प्रसन्नता। रथ पहियों सहित निकल जाता है, परन्तु लकीरें रह जाती हैं। आप ऊँचे घराने की हैं। मुसलमान घरों की मुझे ठीक से जानकारी नहीं, परन्तु हिन्दू घरों में जिन स्त्रियों को विधवा होने का दुख पड़ जाता है वे सत्य धर्म में बैठकर आयु बिता लेती हैं; उनको बेबे जी (माता जी) कहकर बुलाते हैं और अच्छा आदर करते हैं, परन्तु अगर स्त्रियाँ मन की बुरी वासनाओं के पीछे लगकर आगे पीछे की चिन्ता छोड़ देती

---

१. मोठ दाल में पाया जाने वाला कड़ा दाना

हैं उनको कोई माथे नहीं लगाता। जिन पापियों को वे गलती में फँस कर सज्जन मान बैठती हैं वे साथ नहीं निभते। उस समय उन बेचारियों को पता लगता है कि हमने भूल की और सयानों (बुद्धिमानों) की शिक्षा नहीं मानी और मन की गति के पीछे लगी रहीं 'फिर पछताये क्या होय जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत।' समझदार के कथन और आँवले खाये का स्वाद बाद में मालूम होता है। अगर कोई आक के फल को आम समझे और समझदार का कहा न माने तो क्या होता है?

बेगम (ज़रा तुनक कर)–सिंह जी! शिक्षाएँ ठीक हैं। देनी आसान हैं परन्तु मैंने कोई बुरी बात नहीं की, क्या आपमें विवाह और विधवा विवाह मना है?

सिंह जी–सिक्खों में विवाह और विधवा विवाह की तो छूट है परन्तु विवाह हो तो। विवाह एक पवित्र सम्बन्ध है जो पवित्र नियम से जायज़ है, परन्तु मैं तो विवाहित हूँ।

बेगम–स्त्री तो आपकी मर चुकी है (आँसू भर कर) प्यारी शील कूच कर गयी।

सिंह जी–असंभव।

बेगम–नहीं सत्य! चूहड़मल्ल आप के पिता उसको ले गये थे, मैंने भी उनके साथ भेजने से इनकार नहीं किया था, आपकी माता बहुत रो रही थी इसलिए भेजना पड़ा, आपको मैं पहले भी बता चुकी हूँ; परन्तु अब पक्की ख़बर आयी है कि रात छत गिर पड़ने के कारण आपकी पत्नी और पुत्र नीचे दब गए हैं और आपके भाई ने बहुत जल्दी उनका दाह संस्कार भी करवा दिया है। कारण का पता नहीं, परन्तु एक मुखबिर ने ख़बर दी है कि आपके भाई ने उनको मरवाया है छत गिरना बहाना है। उसकी नीयत यह है कि कोई वारिस और बाकी न रहे, सारा धन मैं सम्भालूँ।

सिंह जी—मैं नहीं मानता।

बेगम—मैं कसम खाकर कहती हूँ कि सत्य है, मैं आपके भाई की गिरफ्तारी का हुक्म भी दे आयी हूँ।

सिंह जी ने आँखें बंद कर लीं। प्यारों के वियोग के कारण हृदय में व्याकुलता हुई, परन्तु निश्चयी हृदय में सतिगुरु की मूर्ति आ खड़ी हुई और सिंह जी के ज्ञानवान हृदय में आत्मा ने नित्य और अमर[१] होने का नक्शा बंध गया और कर्मों की प्रबलता और करतार की कृपा को सोच कर आत्मा को प्रसन्न करने वाला शांति का स्त्रोत फूट पड़ा। लगभग दस मिनट बाद आँखें खुलीं, दो आँसू गिरे और सिंह जी के मुँह से शुक्र का शब्द तीन बार निकला। बिजय सिंह को बेगम पर विश्वास तो नहीं आया परन्तु उसने यह जान लिया कि मेरा बल तोड़ने के लिए दोनों मरवा दिए गये हों तो आश्चर्य नहीं, परमात्मा की मर्जी मानकर उसका हुक्म सिर पर धारण किया।

बेगम—अब बताओ?

सिंह जी—क्या बताऊँ? मेरा जन्म इसलिए नहीं कि एक अमीरज़ादी से विवाह करके अपने सुखों में पड़ जाऊँ, मैं तो धर्म और प्रजा की सेवा के लिए पैदा हुआ हूँ। सुन्दर पलंग मेरे लिए शूलों की शैय्या हैं, वनों में काँटों पर भाइयों के साथ सोना मेरे लिए मखमल से अच्छा है, भाइयों के साथ वन के पत्ते खाकर गुज़ारा करने को मैं परम प्रसन्नता समझता हूँ। वह धर्म है, अपनी मौज बहारें ऐश अधर्म है। आत्मा नित्य है शरीर अनित्य। अनित्य के दुखों की परवाह नहीं, क्यों? जल्दी खत्म हो जाते हैं, नित्य के सुख सदा रहते हें, उनकी परवाह करनी चाहिए। फिर और सोचो....जो पुरुष

---

१. मोह रहित जो कभी न मरे।

जिस काम के लिए पैदा हुआ हो, उसको वही करना ही अच्छा है, नहीं तो फिर ऐसे उलाहने मिलते हैं :–

'प्राणी तूँ आया लाहा लैणि॥
लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि॥'

बेगम–मैं कभी किसी के आगे नहीं झुकी, मैंने सबको हमेशा हुक्म अधीन रखा है, यहाँ झुकी हूँ, झुकी की लाज रखो, कहा मानों और कुछ देर गुप्त रहो, फिर मैं तुम्हारे लिए काबुल से शाही फरमान मँगवा दूँगी। दिल्ली वाले आप मरे पड़े हैं; कोई तुम्हारी हवा की ओर नहीं ताकेगा, बिना यत्न बादशाह बन जा। तुम्हारा फर्ज़ भी पूरा हो जायेगा। अब तो सिक्खों में रह कर कहीं मर जायेगा, राजा बनने का समय सिक्खों के लिए दूर है। अगर कोई ज़ालिम नवाब आ गया तो क्या पता सिक्खों का नामोनिशान ही मिट जाये। इस समय को हाथ से न जाने दे। पकी पकायी मिलती है, बिना लहू बहाए ही राज्य बँधता है।

सिंह जी–प्रजा माता! आपके राजपाट देने का शुक्रिया है। परन्तु मैं उस कौम में से हूँ जो अपने भुजदंडों पर बहुत भरोसा रखती है। वे कभी नहीं मानेंगे कि ऐसे राज लें, जब राज्य लेंगे तलवार की धार पर लेंगे। दूसरे, अब्दाली ऐसा बुद्धू नहीं जैसा आप समझते हो। इधर आपने मेरे साथ विवाह किया उधर कुफ्र का फतवा आपके ऊपर लगेगा और एकदम तख्त से उतार दिए जाओगे। अब्दाली तो आता कुछ देर लगायेगा, आपके उमराव ही काम बराबर कर देंगे। कोई मुसलमान यह बात नहीं बर्दाश्त करेगा कि आप एक गैर मुस्लिम के साथ विवाह करो। हाँ मैं मुसलमान हो जाऊँ तो....परन्तु यह असंभव है। मैं चौदह भुवनों की बादशाहत को सिक्ख धर्म पर न्योछावर कर फेंक दूँ, अगर कहें कि तुम्हारे सिक्ख

हो जाने से सिक्ख राज्य हो जायेगा तो मैं इतनी राजनीति जानता हूँ कि यह होने वाला नहीं। तीसरे दिल्ली वाले चाहे कुछ नहीं रहे, परन्तु पंजाब के लिए अभी कुछ बल हैं। गाज़ीउद्दीन वज़ीर की आँख आपकी बेटी पर है। उसने शादी के लिए दबाव डालना है और आपके सिर पर डर बिठाकर रखना है, इस प्रकार ये सारे ख्याल नीति विरुद्ध हैं।

बेगम–किसी भूखे को रोटी मिले तो इनकार करता है? सिक्खों को पूछ तो देखो।

सिंह जी–सिंहों की शूरवीरता स्वाभिमान, हाँ ताबेदारी और छल को वे बहुत बुरा समझते हैं। राजा बनकर चाहे कुछ करें, परन्तु यह समय तो धर्म और बहादुरी का है। जब नवाबी की पदवी सिक्खों के पास भेजी गयी थी तब किस तरह नाक भौं सिकोड़कर इनकार किया था। जब बहुत कहा तब पंखा करते सेवक की ओर इशारा किया कि इसको दे दो। क्या आप प्रत्यक्ष नहीं देखते कि जब अब्दाली आता है तो सिक्ख सब अपने इलाके छोड़कर भाग जाते हैं। मेहनत द्वारा प्राप्त किए इलाके साँप की केंचुल की तरह त्याग जाते हैं, परन्तु अब्दाली को नज़राने लेकर मिल पड़ें और ताबेदारी कर लें इस बात से बहुत घृणा करते हैं और अपनी बहादुरी पर कलंक समझते हैं। फिर देखो आते जाते अब्दाली का पीछा करके उसकी नाक में दम कर देते हैं। जबकि वह दिल्ली की ओर आगे बढ़ता है, ये पंजाब में शोर मचा देते हैं, वह तुरन्त पीछे मुड़ता है तब ये छिप जाते हैं। जब वह काबुल की ओर चलता है तब उसका छुप-छुप कर पीछा करते हैं तथा काबुल गए हुए को इनके कारनामों की खबरें चैन नहीं लेने देतीं। अब्दाली को सिक्ख निश्चिंत नहीं होने देते कि वह हिन्द में पठानी सल्तनत फिर से

कायम कर ले। ऐसे ऊँची बुद्धि वाले ये बहादुर योद्धे पसन्द नहीं करेंगे कि जो कुछ आप कहते हो वो कुछ मान लें। इसलिए मैं आपका शुक्र करता हुआ आपकी सारी बातों से इनकार करता हूँ। मैं एक वन का पक्षी हूँ, सोने के पिंजरों में रहकर मोती चुगने के स्थान पर मुझे स्वतन्त्रता में रहकर वन के कंकड़ों पर गुज़ारा करना अधिक भाता है। छुट्टी।

सिंह जी की धर्म और स्वतन्त्रता की सोच की ओर ध्यान करने पर शाबाश ही मुँह से निकलती है। इतने भारी लालच की दशा में दृढ़ खड़े हैं और मति उज्ज्वल रखी हुयी है। न डोलते हैं, न बुद्धि की आँखें बंद करते हैं। आजकल सुन्दर मूर्ति देखकर ही लोग धर्म हार रहे हैं। विलायत की सैर करने गये गोरियों को साथ चिपका लाते हैं, घर की रोती पीटती रहती हैं। लालच पर गिरना क्या? नीयत भूखे बालक की तरह, सफेद चमड़ी पर ही मोहित हुए घूमते हैं। साहूकार सरदारों की ओर देखो तो कमाई का सारा हिस्सा बुरी जगह पर और ऐशो आराम पर खर्च कर गरीब होते जाते हैं और धीरे-धीरे सरदारों से मज़दूर बनते जा रहे हैं। इसीलिए सिक्खों में दिन ब दिन सरदार कम दिखाई देते हैं, कुछ मर गए और कुछ बुरे कामों के शिकार हो गए। कई घरों में देखो सुख है ही नहीं। उसका कारण भी यही है कि पति पत्नी का प्यार नहीं है, घर का सुख उड़ कर दरिया के पत्थरों जैसे नित्य की रगड़ चलती जाती है। जिस दंपति[१] का प्यार न हो, उनकी संतान माता पिता का आदर करने वाली बहुत कम हुआ करती है। घर परमेश्वर ने स्वर्ग बनाया है, परन्तु बुरे लोगों ने घर को नरक। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री कुल का प्रकाश होती है उसी प्रकार सतीव्रत पुरुष[२] कुल का दीपक होता

---

१. पति-पत्नी।

२. वह पुरुष जो अपनी पत्नी के अतिरिक्त और किसी की ओर न देखे।

है। जैसे स्त्री के लिए पतिव्रत वैसे पुरुष के लिए सतीव्रत धर्म ज़रूरी है। दोनों द्वारा अपना अपना धर्म पालन करने पर सांझा सुख बढ़ता है। दोनों धर्म पालें तो दोनों सुखी, घर स्वर्ग और बच्चों का अच्छा विकास होता है। विचार की ही तो मनुष्य में पशुओं से अधिकता है। जिन्होंने धर्म का विचार छोड़ा है उन्होंने मनुष्यता को त्यागा है।

हे खालसा जी! अपने पूर्वजों के उत्तम जीवनों को देखकर उनके पदचिह्नों पर चलो। धर्म पालन से ही संसार का सुख प्राप्त होता है। धर्म से ही परलोक का सुख है। देखो गुरु महाराज जी ने कैसे कैसे उत्तम उपदेश पतिव्रत धर्म के लिए कहे हैं :–

पलक द्रिसटि देखि भूलो आक नीम को तूंमरु॥
जैसा संगु बिसीअर[१] सिउ है रे तैसो ही एहु पर ग्रिहु[२]॥ (आसा म. ५)

–कांड २०–

चन्द्रमा विहीन विधवा रात्रि पति हीन स्त्री के दुखित हृदय की तरह दुखी है और ठंडी साँसें भर रही है तथा शर्म की नीली चादर तान रखी है। अपूर्ण आशाओं की घबराहट जैसा अँधेरा चारों ओर फैल रहा है। जैसे किसी बालिका के हाथ में से मकई और धान आदि के भुने दानों का छींका गिरकर दानों को तितर बितर कर देता है वैसे ही कुदरत बालिका के फूल, ये तारे, तितर-बितर बिखरे पड़े हैं। पशु पक्षी सहमे हुए चुपचाप पत्थर की तरह सुन्न हुए पड़े हैं। वृक्ष मानों चिन्ता में टहनियाँ गिराकर खड़े हैं। रात्रि की सखी कुदरत भी साथिन के दुख में ऐसे दर्द बाँट रही है कि मानों उसी का रूप हो रही है।

---

१. साँप। २. परायी स्त्री।

अब अँधेरी के और बढ़ने से बादल आ गए। पहले तो अँधेरी की भयानक आवाज़ हाय हाय का नक्शा बाँध रही थी अब बादलों की बूँदा-बाँदी ने आँसू भी बरसाने शुरू कर दिए। घटा की गर्जना से रोने पीटने जैसी आवाज़ आ रही है, इसकी आवाज़ से दुनिया काँप रही है। वृक्षों की शाखाएँ अब धरती पर गिर-गिर कर उड़ रही है। हाय दुखी रात! तुम्हारा तो कलेजा भी फट गया, अंदर के ज़ख्म ऐसे चमके कि चन्द्रमा भी नहीं कभी चमका। हाँ रात का कलेजा फटा, लोगों के विचार में बिजली कड़कने लगी। हे काली रात! पापों की माता! दुनिया के उपद्रव तुझमें होते हैं। अपने दुखों से अपना आप जला, गरीब प्राणियों को क्यों दुख देती है। आज तुम आप इस तरह रो धो रही हो, कभी तुम्हारे काले हृदय में तब भी तरस आता है जब तुम्हारी शह पा कर चोर घर तोड़ ले जाते हैं और बेचारे बेगुनाह सोये-सोये ख़ाकशाह हो जाते हैं। हाँ, गरीब यात्री लूटे जाते हैं। हे रात! तुम डाकुओं को सहारा देती हो, तुम खूनी को खून करने में मदद देती हो, जिस समय वह दाँये हाथ में तलवार उठाता है तुम बाँया हाथ बनकर उसके दुष्ट कर्म में सहायता करती हो। कई पतिव्रता स्त्रियों के सत्य के खलिहान तुम्हारे काले अँधेरे में दुष्टों के हाथों जलाये जाते हैं, तुम्हारे अँधेरे में अनेक विधवाएँ और अनेक अनाथ हुए। आज तुम्हें कुछ पता लगा है कि किसी का दिल दुखाना क्या चीज़ होता है। देखो! तुम्हारी बुरी प्रवृति का कैसा सहमारने वाला प्रभाव है कि जीव जन्तु सब तोप की आवाज़ सुनकर डरे हुए कायर जैसे बेसुध हुए पड़े हैं। हे शक्तिशाली पुरुष की काली कमली जैसी काली रात। तुझे संगति का असर भी नहीं हुआ। चन्द्रमा तुम्हारा पति नूर की बौछार करता है और लम्बे समय तक तुम्हारे साथ रहता है, परन्तु तुम काली की काली रही। पति के भय की मारी उसके सामने तुम सफेद शक्ल

बनाती हो, परन्तु तुम्हारा अँधेरा खड्ढों, कंदराओं, वृक्षों और गुप्त स्थानों पर छिपा इस ताक में रहता है कि कब चन्द्रमा जाये तो कब वह निकले। अगर तुम अच्छी होती तो तुम्हारी कालिख चन्द्रमा की चाँदनी के साथ द्वारा दूर हो जाती। परन्तु तुम काली की काली रही, कहीं तुम्हारी कुसंगति के प्रभाव से ही तो चन्द्रमा में धब्बे नहीं पड़ गए।

इस रात में हम क्या देखते हैं कि भाई बिजला सिंह जी लाहौर के किले के नज़दीक घूमते-घूमते वन की ओर निकल गए। एक स्थान पर पैर को कुछ नरम-नरम लगने के कारण ठिठक गए। जब बिजली की चमक कौंधी तो एक सिक्ख भुजंगी और एक सिंहनी पर उनकी दृष्टि पड़ी दूसरी चमक में विश्वास हो गया कि ठीक यह किसी सिंह का परिवार है। भाई जी ने चतुराई से एक को उठाया और थोड़ी दूर पर एक कच्ची कोठरी के अंदर ले गये, फिर दो लोग आकर सिंहनी को उठा ले गए। यह वह स्थान था जहाँ आजकल सुन्दर मंदिर श्री गुरु अर्जन देव जी का डेरा साहिब के रूप में सज रहा है। उन दिनों देहुरे के साथ एक कच्चा कोठा और चारदीवारी सी थी और इसीलिए किसी की नज़र कम ही खिंचती थी। एक ज्योतिहीन सिक्ख यहाँ रहता था और पंथ के भेदियों के लिए बहुत सहायता का कारण था। जब बिजला सिंह जी अंदर गए तो क्या देखते हैं कि आगे दो सिंह भेस बदले हुए और बैठे हैं जो करोड़ा सिंह के जत्थे में से बिजय सिंह की खोज के लिए आए हुए थे। अब चारों सिंहों ने सिंहनी और भुजंगी सिंह को देखा और पहचाना कि ये तो बिजय सिंह के पुत्र और स्त्री हैं, उनके भीगे कपड़े उतार कर सूखे चादर लपेट दिए, आग जलाकर सेंक दिया, और कुछ दवा दारू ताकत का दिया। सारी रात धर्मात्माओं की

मेहनत ने दोनों अति निर्बलों को फिर से जीने लायक कर दिया और तंदरुस्ती के मज़बूत हाथ ने प्यार देकर उनकी मुरझा रही जीवन लय को पुनः जीवित कर दिया। वास्तव में पहले तो बारिश में भीगना ही उनके काम आ गया था, क्योंकि ज़हर का घोल जो उनको पिलाया गया था उसमें कुछ अफीम का अंश भी था। ज़हर पीते ही कै आने के कारण और ज़हर तो निकल गए थे, कै गुणकारी साबित हुई थी, परन्तु अफीम का कुछ अंश बाकी था जिसके नशे ने कुछ मस्त कर रखा था परन्तु मूसलाधार पानी पड़ने ने उस असर को भी तोड़ दिया ; सत्य है–

"जिस राखै तिसु कोइ न मारै॥"

दूसरा दिन और तीसरा दिन तो दोनों का लेटे-लेटे ही बीता। फिर शील कौर कुछ सँभली और धर्मात्मा भाइयों को सारा समाचार अपनी विपदा और पति के कष्टों का कह सुनाया। अब छोटे से भाईचारें ने सलाह की और पक्की योजना बनाई कि सभी लोग करोड़ा सिंह के जत्थे में पहुँचे और बिजय सिंह के छुटकारे का उपाय करें। इस प्रकार एक दिन संध्या के समय बदले हुए वेशों में सभी लोग चलते बने।

अब सिक्खों को उतना डर नहीं रहा था, जितना पहले मीर मन्नू के समय हुआ करता था। कारण यह था कि सारे देश में सिंहों ने अपने हाथ पैर मारने आरंभ कर दिए थे। क्योंकि बेगम तो अंदर ही अंदर और झंझटों में फँसी बैठी थी, कुछ उमरावों और बेगम की बिगड़ रही थी। वैसे भी अमीर वज़ीर मुँहफट हो रहे थे कि सब ने चोरी-चोरी दिल्ली चिट्ठियाँ भेज दी थीं कि बेगम देश का नाश कर रही है, और सिक्खों ने इस घर की फूट को ताड़ कर अपना सिक्का बिठाना फिर आरम्भ कर दिया है।

उधर बिजय सिंह के समझाने का कुछ असर नहीं हुआ। जितनी बिजय सिंह ने अपने धर्म पर दृढ़ता दिखलायी उतना बेगम का दिल अधिक मोहित होता गया, और यह निश्चय दृढ़ होता गया कि इस जैसा पुरुष यह आप ही है। प्यार के कड़े आक्रमणों के आगे बड़े-बड़े कठोर हृदय अंत में फतेह हो जाते हैं। लिख देना और पढ़ लेना कुछ और बात है, परन्तु हृदय की कोमल दीवारों पर प्रेम के गोलों की चोटें सहनी कुछ और बात। परन्तु गुरु गोबिन्द सिंह जी के शूरवीर, जिनके हृदय में वह कलगी वाला तेजस्वी रूप बैठा है, किसी दुश्मन के आगे नहीं गिरते। यह एकदम सच्ची बात है कि सिक्ख शत्रु से शरण माँगनी जानते ही नहीं। अपने भाइयों के द्रोह का शिकार चाहे बनें परन्तु अपना पवित्र नाम हार मान लेने से जोड़कर सिंहों ने कभी कलंकित नहीं किया। इस जंग में सिंह जी हारे नहीं तथा कोई यत्न चिकने घड़े को प्रभावित नहीं कर सका। जादू-टोनों की बारी भी आई। चोरी चोरी एक फकीर आग जला और कई उपद्रव रचाकर चालीसे१ पर बैठा। एक फकीर ने बेगम को यह ढंग बताया कि बिजय सिंह की मूर्ति सामने रखकर तीन-चार घंटे बैठकर एक कलाम का पाठ किया करे परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ तथा असर भी कुछ नहीं हुआ। कुछ दिन बीते तो एक रात बिजय सिंह जी क्या देखते हैं कि बेगम ने आकर चरण पकड़ लिए हैं; और बहुत रोयी है, सिंह जी के हृदय में दया आ गई सोचने लगे कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी बताते हैं कि 'जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ ना ठाहे कहीदा।' मैंने इस बेचारी के दिल को बहुत दुखी किया है। ऐसा न हो कि कहीं लेने के देने पड़ जायें, कहीं एक पाप से बचता बचता दूसरे में पड़ जाऊँ स्नेह से पूछने लगे कि बेगम जी! आप क्या माँगते हो?

---

१. चालीस दिन का व्रत आदि कर्म, चालीसा।

बेगम–आप जानते ही हो, बस इतनी बात कि आप मुझसे विवाह करवा लें।

सिंह जी–यह बहुत मुश्किल बात है।

बेगम (छुरी निकाल कर)–लीजिए फिर मैं अपनी जान पर खेल जाती हूँ। प्यार की यज्ञवेदी पर न्योछावर होना बेहतर है, लीजिए मैं चली और कटारी पेट में मारी।

परन्तु सिंह जी के फुर्तीले हाथ ने छुरी पेट के समीप पहुँचने से पहले ही बेगम का हाथ पकड़ लिया और कहा कि तुम यह पाप हमारे सिर मत चढ़ाओ, हम तुम्हारे लिए दुख झेलते हैं, जाओ तैयारी करो हम विवाह कर लेंगे। वह तो खुश होकर चली गयी, उधर सिंह जी के सामने एक बली निहंग सिंह-जिसका चेहरा देखकर मन काँप जाये आ खड़ा हुआ और तलवार खींच कर बोला–'सिंह! यह क्या वचन दिया है, करूँ दो टुकड़े?' यह कहकर तलवार घुमायी, इस धमक में सिंह जी की नींद खुल गयी और आँखें मल-मलकर चारों ओर देखते हैं, कहीं बेगम की महक नहीं, कहीं निहंग सिंह का निशान नहीं, कहीं तलवार नहीं, अकेला बिजय सिंह है। कलेजे को धुक धुकी लग रही है, आँखों के आगे मोमबत्ती के जगमग करने के बावजूद भी अँधेरे के गोल गोल चक्कर आ जा रहे हैं। घबरा-घबरा कर चारों ओर नज़र के दूत दौड़ रहे हैं, परन्तु थाह नहीं मिलती। माथा तप रहा है शरीर में से मानों गर्म लपटें निकल रहीं हैं उठकर बाहर; छज्जे पर जा बैठे। ठंडी ठंडी हवा ने आकर प्यार दिया शीतलता ने गर्मी को चूसा; मन ठिकाने आया और बिजय सिंह को तसल्ली हुई कि यह सब स्वप्न था। परन्तु हाय कहर, सिंह जी को अपने आप पर गुस्सा आ रहा है, कि मैंने सपने में भी क्यों परायी स्त्री को विवाह का वचन दिया।

पहले मेरा दिल सज्जन था परन्तु अब वैरी हो गया प्रतीत होता है। जब बगल में रहने वाला सज्जन ही वैरी हो गया है, चाहे इसने सपने में साथ छोड़ा है, तब अब किस पर आस रखी जाये कि कठिनाई के समय रक्षा करेगा? चारों ओर सत्य धर्म से गिराने में लोग हैं, एक अपना मन सज्जन था, चाहे इसने नींद में साथ छोड़ा है, परन्तु छोड़ा तो है न, क्या पता जागृत अवस्था में भी कभी धोखा दे जाये। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का हुक्म है कि सपने में भी नाम ही चित्त में आये तो अच्छा है। हाँ सपने में भी सावधानी की आवश्यकता है। यह कहते हुए आपने अपने ओंठ काटे और कभी न डगमगाने वाले सिंह जी ने दिल तरंगों को खींचा। जिन आँखों ने बड़े-बड़े कष्टों में आँसुओं से पहचान भी नहीं की थी, इस समय कुछ सजल[1] हो आयी थीं।

खालसा जी! अपने बुजुर्गों के जतसत[2] की ओर ध्यान करो, कि सपने में केवल बातें मात्र करने से दुखी हो रहे हैं। सिक्खों के तेज प्रताप का यही भेद था, जो हमें मालूम न रहने के कारण हम तंग हो रहे हैं।

जतसत के प्रताप से शरीर पुष्ट और जवान होता है, संतान बलवान होती है, अपनी आत्मा स्वच्छ और संतान की आत्मा निर्मलता की ओर रुख़ करती है। जो लोग इस गुण को धारण करते हैं वे हमेशा संसार पर बढ़ते हैं, जो इस गुण को छोड़ते हैं अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते हैं। भरथरी कहता है—न समझो कि आप लोगों को भोगते हो, नहीं भोग आपको भोगते हैं। शरीर बूढ़ा हो जाता है, वासनाएँ बूढ़ी नहीं होतीं, इससे समझ लें कि भोग भोगते

---

१. आँखें तर-बतर होना।

२. यति होने का भाव।

हुए जीव आप भोगे जाते हैं। शरीर की ताकत और अरोग्यता और आत्मा की शुद्धि तथा कौमी उन्नति का पहला नियम ऊँचा पवित्र आचरण है तथा साथ ही वाणी नाम का अभ्यास।

कुछ सौ बरस पहले तो आपका ऐश्वर्य था ; आज नहीं। तब भजन बंदगी और पवित्र आचरण के साथ बहुत प्यार था।[१] चाहे अब भी सिक्ख बहादुर हैं परन्तु कहाँ बाबा दीप सिंह और बाबा गुरबख्श सिंह वाली राजसी बहादुरी, वे हृष्ट-पुष्ट शरीर, वह शेरों जैसा डील डौल, वह बल, वह पराक्रम, उन जैसा धर्म, विश्वास, सिक्खी सिदक।

—कांड २१—

जैसा हम पीछे कह आये हैं कि दरबार का काम बिगड़ने लग गया था। दरबारी बेचारे बहुत मुश्किल में फँस गए। अगर बेगम के हुक्म की इंतज़ार करते तो कई कई दिन ऐसे ही बीत जाते अगर बिना पूछे करते तब बेगम नाराज़ होती और नाराज़ भी इतनी अधिक कि अच्छे अच्छे अमीरों की इज्जत उतार देती। एक दिन एक हिम्मत वाले अमीर ने समझाया, समझाना तो एक ओर रहा इसने बेचारे की अच्छी इज्जत उतारी (बेइज्जती की)। भिखारी खाँ की भवितव्यता अभी आँखों के आगे ताज़ा ही थी, सारे दरबारियों ने इकट्ठे होकर एक चिट्ठी दिल्ली भेज दी और अपने अपने घर में बैठ गए, दरबार और रियासत का काम छोड़ दिया। ऐसा शुभ अवसर तो सिंह ढूँढते ही रहते थे इसलिए वे काम में लग गए थे और अपना सिक्का बिठाने में तत्पर हो रहे थे। करोड़ा सिंह के

१. लगभग पचास वर्ष हुए तब सिक्ख सरदारियों को कच्चे खुशामदी और कुसंगी आ लगे थे; अब पश्चिमी कुसंग कठिनाई दे रहा है।

जत्थे में यह समय बिजय सिंह को छुड़ाने का विशेष रूप से उत्तम समझा गया। एक दिन रौणी जंगल में दीवान लगा हुआ था, सरदार जी ने शील कौर और भुजंगी को पंथ के सामने खड़ा कर सब को इनके दुखों और धर्म पालन का हाल सुनाया और साथ जी बिजय सिंह जी के किले में फँसे होने के हाल बताये कि किस किस प्रकार के लालचों के समुद्र में अडिग खड़े हैं। ये सारे समाचार सुनकर खालसा जी ने धन्य धन्य कहा और फिर सब ने कहा कि चलो अब उनको निकालें। करोड़ा सिंह ने पूछा : कि कैसे काम किया जाये, कुछ सलाह दो? उस समय कई सिंहों ने सलाह दी। एक ने कहा–एक दम कूच कर धावा बोल दो। एक ने कहा–सारा पंथ इकट्ठा कर लो और फिर खूब युद्ध करो। सरदार जी बोले कि चाहे बादशाही ढीली पड़ी हुई है, पर दिन दिहाड़े और खुल्लम खुल्ला लाहौर पहुँचना कठिन है। चाहे दुश्मन आपस में बँट गए हैं परन्तु हमारे जाने पर सभी ने एक हो जाना है। अगर पंथ इकट्ठा करें तो समय नहीं क्योंकि पंजाब के दो दावेदार बने बैठे हैं। एक दिल्ली दूसरा काबुल। दोनों को खबरें पहुँच गयी होंगी। किसी न किसी ने उस समय तक पहुँच जाना है कोई और तरकीब निकालो जिससे साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।

यह सुनकर सभी चतुर और समझदार चुप हो गए और गहरी सोच में डूब गए, परन्तु भुजंगी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला, बापू जी! क्यों न सभी सिंह भेस बदलकर अलग-अलग रास्तों से लाहौर के पास रावी के घने जंगल में जा इकट्ठे हों और अँधेरा होने पर अचानक किले में घुसकर पिता जी को छुड़वा लायें।"

करोड़ा सिंह सुनते ही मुस्करा पड़ा। बार-बार भुजंगी के चेहरे की ओर देखे, आखिर गले के साथ लगाकर बोला, 'धंनु जननी जिनि जाइआ धंनु पिता परधानु।' भुजंगी की सलाह को मस्तान सिंह और धर्म सिंह ने, जो करोड़ा सिंह के दायें बाँयें थे, बहुत पसन्द किया और बाकी सभी सिंहों ने वाह-वाह की।

सिंहों ने अलग-अलग भेस बना लिये, कोई पठान, कोई मुगल, कोई राजपूत, कोई जमींदार बन गया और कूच कर दिया। इस तरह एक-एक, दो दो करते सारे रावी के घने जंगल में आ इकट्ठे हुए। भेदिए भेजकर खबरें लीं तो पता लगा कि सारी फौज मियाँ मीर फकीर के रोज़े के समीप वाले मैदान में किसी तैयारी के लिए इकट्ठी हो रही हैं। किले के अन्दर पहरा थोड़ा ही होता है, अंदर भी थोड़ी सी सेना है। ये सारे भेद उस सेविका ने बताये जिसने शील कौर को ज़हर पिलायी थी। यह तभी से मन में ऐसी पछतायी थी कि बिजय सिंह की छिप-छिप कर सहायता करती और बाहर खबरें ले दे आती। आज किसी काम से किले में से बाहर निकली तो पहले पाँचवी पातशाही के डेरे के कच्चे कोठे (कमरे) में सूरमा (नेत्रहीन) सिंह जी के पास गयी। वहाँ ही भाई रमता सिंह जी भेदिया आया बैठा था, वह तुरन्त उसको सरदार के पास ले गया। वहाँ उसने सारा भेद सरदार जी को जा बताया और विश्वास दिलाया कि मैं आपको बिजय सिंह के कमरे में ले चलूँगी।[१]

जब संध्या घिरने लगी तब अचानक किले के दरवाज़े के आगे दस आदमी आ निकले, जिन्होंने पहरेदारों के साथ दो-दो हाथ

---

१. बाद में इस सेविका ने भी अमृत पान कर लिया था और सेवा में सारी उम्र बिता दी थी।

किए। पहरे वाले आदमी अचारक घिर जाने के कारण घबरा कर मुकाबला ठीक न कर सके और घायल होकर गिर पड़े। 'बिजय डंके' की आवाज़ हुई और लगभग पचास जवान सशस्त्र अचानक पीछे से निकल आये और किले के अंदर घुस गए। पीछे से लगभग पचास आदमी और आए और दरवाज़े पर पहरा देने लगे। करीब इतने ही और आए और अन्दर बढ़े और सौ सौ कदम पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गए, चार-चार का पहरा खड़ा करते गए। पीछे कुछ दूरी पर और सेना थी, जो सीटी की आवाज़ पर और जवान भेज देती थी। सेविका रास्ता बताती गयी और मस्तान सिंह जी जवानों को आगे करते गए और बिजय सिंह के कमरे के आगे जा रुके। दरवाज़े की दरारों में से नज़र की तो देखा—आश्चर्यजनक कौतुक है, कमरा है कि स्वर्ग का नमूना है, ईरानी गलीचे और मखमल नीचे बिछे हैं, मोरपंखी उन्नत के पलंग लग रहे हैं, सोने चाँदी की चौकियाँ सज रही हैं। छत शीशों से जड़ी झिलमिल-झिलमिल कर रही है। हज़ारों रुपयों के झाड़फानूस मोमबत्तियों को लेकर जगमग जगमग कर रहे हैं। दीवारों पर तरह-तरह की सुन्दर मूर्तियाँ लटक रही हैं। सुगन्ध अन्दर इतनी है कि जैसे स्त्रोत के गुलाब का सारा इत्र यहाँ आकर आ बिखरा है। चार अत्यधिक सुन्दर युवतियाँ बैठी सिंह जी को समझा रही हैं कि अभी वक्त है समझ जायें, नहीं तो सुबह बेगम कुछ न कुछ कर बैठेगी, सिंह जी के न मानने और कठोर हठ के न टूटने पर ये सेविकाएँ लुप्त हो गयीं और चार काले हब्शियों ने निकलकर सिंह जी के चारों ओर नंगी तलवारें चमकायीं, आँखें फाड़-फाड़ कर डराया परन्तु वह ईश्वर का प्यारा न सुन्दर स्त्रियों के कारण खुश था, न डरावने हब्शियों के भय के कारण डरा। इस कौतुक को देख मस्तान सिंह ने सोचा कि अगर जल्दी की तब ये

हब्शी हमारे पहुँचने से पहले-पहले तलवार चला देंगे, इंतज़ार करते हैं तो समय बहुत कम है, हम बहुत बड़े दुश्मन के घर में खड़े हैं। जितनी जल्दी हो सके निकल चलें तो ही ठीक है। इतने में करोड़ा सिंह आ गया, उसने भी दरारों में से देखा। बुद्धि के भण्डार ने तुरन्त सेविका को कहा--क्या कोई और रास्ता अन्दर जाने का नहीं है? वह बोली कि हाँ है। मैं पीछे की ओर की खिड़की के रास्ते अंदर जा सकती हूँ।

करोड़ा सिंह-क्या बेगम को तुम पर शक तो नहीं?

सेविका--जी नहीं।

करोड़ा सिंह-जा फिर जल्दी कर, अन्दर जाकर हब्शियों को कोई हफड़ा-दफड़ी की बात कह कर बेगम की ओर भेज। सेविका ने इसी तरह किया, अंदर की ओर से जाकर हब्शियों को हफड़ा दफड़ी डाल दी जल्दी जाओ, बेगम के कमरे की ओर दौड़ो, किले में कुछ अजनबी आ गए हैं। वे हब्शी सेविका को जानते थे, दौड़ पड़े। वे अभी पीठ कर मुड़े ही थे कि मस्तान सिंह ने बंदूक के कुंदे को अटका कर दरवाज़ा तोड़ दिया और दूसरे ही क्षण करोड़ा सिंह जी यह गाते हुए : 'जन नानक अंगु कीआ प्रभि करतै जाकै कोटि ऐसी दासाइ।।' सिंह जी का आलिंगन किया और अपनी बाँहों में लिए बाहर आये। सत श्री अकाल की धीरे-धीरे गर्जना की, जैसे सर्दी की ओस पड़ती है। मस्तान सिंह और धर्म सिंह आलिंगन करते हुए मिले, सिंह जी ने अचंभित होकर फतेह बुलायी, परन्तु समय के बहुत कम होने के कारण सरदार ने पीछे की ओर कूच का आदेश तुरन्त दे दिया। चुप चाप खालसा की फौज पीछे की ओर मुड़ी। जेलखाने के एक दरवाजे के आगे कुछ सिपाही पहरा दे रहे नज़र आये, उन्होंने बन्दूक चलायी, खालसे की तलवारों ने हाथों

हाथ फैसला किया और आप आगे बढ़े। ये अभी किले के बाहर नहीं हुए थे, किले में से बहुत घमासान और शोर की आवाज़ उठी। तुर्रियाँ बज रही थीं और दायें बायें बेतुकी बंदूकों की ठाँय ठाँय हो रही थी और बीच में बेगम की क्रोध भरी आवाज़ कड़कती सुनायी देती थी। सिंह अभी किले के दरवाज़े तक पहुँचे ही थे कि तीन चार महताब[१] आकाश में चढ़ आये मानों दिन चढ़ गया, तुर्कों ने देखा सिक्खों की फौज है, और दरिया को जा रही है, इस हालत को करोड़ा सिंह ने भी देख लिया और सोचा कि इन्होंने दो चार तोपें चला देनी हैं, जिससे हमारा नुकसान बहुत होगा। परन्तु वह यह भी जानता था कि तोपें भरते भी इनको समय लगेगा, इसलिए तुरन्त हिरण की तरह भाग जाने का हुक्म दिया। फौज सरपट दौड़ी। शुक्र है करतार का, और शाबाश है जत्थेदार की बुद्धि की कि वे तोप के गोले चलने से पहले गोले की मार से परे निकल गए। इतने में दरिया का गहरा घना जंगल आ गया और सिंहों का दल इस घने जंगल में घुसकर रातों रात कुछ रास्ता निकालकर एक भारी रक्ख[२] में जा छिपा। जहाँ जाकर विश्राम किया, बिछुड़े मिले, दिलों के दुख बाँटे और करतार का शुक्र किया। बिजय सिंह जी ने फिर वही काम सँभाला, शील कौर ने लंगर आदि की सेवा अपने सिर ले ली, परन्तु अब दिन ज़रा आराम के थे, इसलिए कुछ दिन अच्छे आराम के बीतने लगे और इस धर्मात्मा परिवार ने मुसीबतों के मुँह से छूटकर सुख और आराम की शक्ल देखी।

–कांड २२–

उधर बेगम का हाल सुनो। जब सिक्खों की फौज चुप चाप किले में घुसने की खबर हुई तो बहुत क्रोधित हुई, क्रोध चढ़ गया

१. चन्द्रमा का प्रकाश, गंधक आदि पदार्थ मिलाकर बनाई गयी बत्ती जिसके जलाने से चन्द्रमा जैसा प्रकाश हो, एक प्रकार की आतिशबाज़ी।

२. वह जंगल जो रक्षित हो, जिसमें बिना मालिक की आज्ञा कोई प्रवेश न कर सके।

और किले के जमादार को बुलाकर बहुत डाँटा। उसने बहुत फुर्ती की परन्तु फुर्ती के फलीभूत होने से पहले ही सिंह उनकी चपेट से पार निकल गए थे। झुँझलायी हुई बेगम ने जमादार को कैद किया और बाकी फौज को जो मियां मीर के समीप उतरी हुई थी तैयार करवाकर सिक्खों के पीछे भेजा। दो दिन भटक-भटक कर वे भी वापिस लौट आये, क्योंकि उनको सिक्खों का नामोनिशान भी न मिला। दो चार दिन बाद जब क्रोध ठंडा हुआ, बेगम को बिजय सिंह की गुस्ताखी और निकल जाना दुख देने लगा, और गहरी सोच में डूबी रहा करे। इस दशा में एक और मुसीबत ने उसको आ घेरा, वह यह कि दरबारियों का बादशाह की ओर शिकायत लिखने का समाचार उसको मालूम हो गया, अब वह घबरायी कि यह तो बादशाही भी चली। इस समाचार ने उसके गिरते दिल में उल्टा जोश पैदा किया, उसका नर स्वभाव, जिसे बिजय सिंह के रूप और गुणों ने स्त्री कर दिया था, अपनी असलियत पर आ गया और राजसी मद ने जोश मार कर छाती ठोंकी कि कौन है जो मुझ पर कोई वार कर सके? हाँ मुझ पर वार कर मुझ पर कोई कामयाबी पा सके? और फिर आप सलामत रह सके? असंभव है। तुरन्त बेगम ने खास मुन्शी को बुलाया और काबुल के अमीर की ओर चिट्ठी लिखी कि मुझे औरत समझ कर मेरे दरबार के सारे अमीर मेरे साथ शत्रुता करते हैं और राज्य अपने हाथ में लेना चाहते हैं अगर मैं हुक्म देती हूँ तो उलटा (पूरा नहीं करते) देते हैं और सब ओर मनमानी करते हैं, प्रजा को लूटते हैं और सिक्खों के साथ मिल गए हैं, जिन्होंने स्थान-स्थान पर शोर-शराबा डाल दिया है। एक दिन किले के दरवाजे खोलकर सिक्खों को अंदर घुसा दिया। किले का जमादार भी बेईमान हो गया है। अगर मैं आप नंगे मुँह सिक्खों के साथ युद्ध

न करती तो लाहौर भी गया था। अब ये दिल्ली वालों को मुझ पर हल्ला करने के लिए उकसा रहे हैं। इस प्रकार मैं इन नमकहरामों के हाथों तंग आ गयी हूँ, आप मेहरबानी कर कोई नेक अफसर भेज दो, जो मेरी इच्छानुसार मेरे अधीन काम करे।

अब्दाली यह खबर सुनकर गुस्से में आ गया और कुछ विचार करने के बाद थोड़ी फौज देकर एक जहांदार खाँ नाम के अमीर को लाहौर रवाना किया।

इसने आकर बेगम की नायबी कहो तो, वज़ीरी कहो तो अपने हाथ में ली और देश का इंतज़ाम करने लगा। पुराने अमीर तो माथे न लगें और नये काम न सँभाल सकें, जहांदार जाल में फँस गया; बहुत इंतज़ाम करे परन्तु वश कुछ न चले। उधर सिक्खों ने हलचल मचा दी, किसी स्थान पर सुख न व्याप्त हो। सरकारी मामला (टैक्स) इकट्ठा करना कई स्थानों पर बंद हो गया। जो इकट्ठा हो रास्ते में सिक्खों के हाथों लूटा जाये। दूर-दूर के इलाके तो सभी सिक्खों ने सँभाल लिए, परन्तु नज़दीक भी सिक्खों की मार से बच न सके। जहांदार खाँ एक तो नया, दूसरे मदद कोई न करे, ऊपर से बेगम के हुक्म भी बिना इधर उधर करे तुरन्त मानने पड़ते, वह चुप चाप वापिस लौट गया।[१] उसका आना जाना एक सपने की तरह बीत गया। बात क्या बहुत रोना धोना हुआ, परन्तु जैसे क्षय रोग दवा खाने के बावजूद भी बढ़ता जाता है वैसे ही पंजाब का इंतज़ाम योजनाएँ बाँधने के बाद भी दिन ब दिन बिगड़ता गया। पुराने अमीर सब इस बात को देख रहे थे और कुछ इस खराबी का आप भी कारण थे। वे रोज़ दिल्ली ख़बरें भेजते थे। गाज़ीउद्दीन, जो दिल्ली के बादशाह का वज़ीर था, परन्तु वास्तव में आप बादशाही करता था और जिसने बादशाह को काठ की पुतली बना रखा था, इस समय को भाँपकर बहुत अधिक फौज लेकर लाहौर की ओर चल पड़ा।

---

१. तवारीख कन्हैया लाल, पृष्ठ ७८

जब यह ख़बर बेगम को पहुँची, तुरन्त एक पत्र गाज़ीउद्दीन की ओर लिख भेजा कि अमीरों ने आप को धोखा दिया है। मैं दिल्ली की सेविका हूँ, अगर आपको संदेह हो तब मैं आपके सभी संदेह दूर करने के लिए तैयार हूँ।

मुहम्मद लतीफ लिखता है :–प्रतीत होता है कि मीर मन्नू ने दिल्ली दरबार में अपना ज़ोर बढ़ाने के लिए दिल्ली के वज़ीर गाज़ीउद्दीन के साथ अपनी लड़की की सगाई कर दी थी, परन्तु मन्नू की मृत्यु के बाद मुराद बेगम और उसकी बेटी दोनों विवाह के विरुद्ध थीं, परन्तु गाज़ीउद्दीन को पक्की आशा थी। उस ने जब लाहौर के प्रबन्ध की वीरानी के बारे में सुना तो पहले सैय्यद जमील को भेजा कि बेगम की मदद करो।[1] जमील ने आकर प्रबन्ध शुरू कर दिया। अमीर बेचारे घबराये हुए थे, कि यह नया हाकिम पता नहीं क्या करेगा, परन्तु उन्होंने उसके साथ दोस्ती गाँठ ली और अनेक तरह उसका बेगम की ओर से दिल चढ़ा दिया (दूर कर दिया)। जमील ने बेगम के आदेशों को छींके पर धर दिया, और नये नौकर हटाकर सब पुराने रख लिये, घरों से बुला-बुलाकर उनके ओहदों पर उन्हें ही स्थापित कर दिया। उधर वज़ीर गाज़ीउद्दीन को पत्र लिखकर बेगम के लिए ऐसा संदेह बना दिया कि वह मानों लोहे का स्तन हो गया। जब बेगम ने अपनी सत्ता जाती देखी तब गाज़ीउद्दीन की ओर उलाहने लिखे और जमील की गलतियों पर नाराज़गी व्यक्त की परन्तु उसके कानों पर जूँ नहीं रेंगी, और किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया। बेगम बहुत हौंसले वाली और नर मिज़ाज वाली थी, एक और यत्न किया, चोरी-छिपे अब्दाली को शिकायत लिखी कि मेरे साथ दिल्ली के वज़ीर ने बहुत अपमानजनक व्यवहार किया है।[2] अब्दाली पहले ही दाँत पीस रहा था। इधर बेगम

१. मुहम्मद लतीफ। २. कन्हैया लाल ने इस मौके पर बेगम का स्वयं आप काबुल जाना लिखा है परन्तु यह बात और किसी स्रोत से प्रमाणित नहीं होती, इसलिए ठीक प्रतीत नहीं होती।

की काबुल के साथ जोड़ तोड़ का पता गाज़ीउद्दीन को लग गया था, वह फौज लेकर लाहौर के लिए चल पड़ा, जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं। शहज़ादा मिर्जाअली गौहर, जो आलमगीर बादशाह का बड़ा शाहज़ादा था, भी वज़ीर के साथ था। माछीवाड़े पहुँचकर वज़ीर ने डेरे डाल दिए और बेगम की ओर हरकारे भेजकर अपने विवाह की बातचीत छेड़ दी। बेगम इन संदेशों के चक्कर में आ गयी। उसने समझा कि वह सच में विवाह करने आया है। एक दिन वज़ीर थोड़ी सी फौज लेकर माछीवाड़े से लाहौर पहुँचा और विवाह के बहाने ही शहर में जा घुसा और फौरन शहर तथा किले पर कब्जा करके बागडोर अपने हाथ में कर ली। बेगम को तभी पता चला जब उसने अपने आप को उसके चंगुल में पाया।

चाहे वज़ीर कामयाब हो गया परन्तु तब भी उसने देखा कि बेगम खुशी खुशी बेटी का विवाह मेरे साथ नहीं करती तब उसने उसे कैद कर लिया, नवाबी के ओहदे से हटा दिया और शाही कैद में डालकर दिल्ली अपने साथ ही ले चला और बेगम की बेटी के साथ जबर्दस्ती विवाह कर लिया।[१] लाहौर की नवाबी वज़ीर ने ३० लाख के राजकर पर अदीना बेग को दे दी। माछीवाड़े पहुँच कर बेगम ने शहज़ादा अली गौहर के पास अपने दुखड़े रोकर उसको अपना पक्षधर बना लिया। शहज़ादा अली गौहर ने वज़ीर को समझाया कि अब मुराद बेगम तुम्हारी सास है और बहुत दुखी है, इसको पंजाब की नवाबी दे दो, परन्तु उसने एक न मानी, बल्कि रास्ते में वज़ीर सास को सख्त तंग करता गया और वह भी सारे रास्ते गालियाँ और श्राप देती गयी कि देखना अब्दाली आकर तुम्हारी सल्तनत तबाह कर देगा (बात क्या संवत् १८१३ वि०, ११७० हिजरी को अब्दाली पठानों की अनगिनत फौज लेकर लुट

१. उम्दा-तु-तवारीख़।

चुके, कंगाल हो चुके पंजाब पर फिर चढ़ आया[१] यह सुनकर अदीनाबेग और सैय्यद जमील दोनों भाग गए। अदीना बेग पहाड़ों पर चढ़ गया और पहाड़ी राजाओं के पास जा शरण ली। सिक्ख सरदार जो अब्दाली के रास्ते के आस पास थे, अपने अपने इलाके छोड़कर वनों मे जा घुसे[२] इस तरह अब्दाली का रास्ता साफ हो गया। उसने तुरन्त लाहौर आकर कब्जा किया और अमीरों को खूब लूटा। चूहड़ मल्ल भी इस समय लूटा गया।[३] यहाँ की हुकूमत अब्दाली ने मीर

---

१. मुराद बेगम ने अपनी बेटी का नाता (रिश्ता) अब्दाली के पुत्र को देना तय किया हुआ था, साथ ही लाहौर की नवाबी पर बेगम को उसी ने स्थापित किया था। इसलिए गाज़ीउद्दीन की कार्यवाही को उसने अपना बहुत भारी अपमान समझकर चढ़ायी की थी।

२. ये समाचार तो लगभग फारसी के और लतीफ आदि लेखकों की रचनाओं से सही प्रमाणित होते हैं। कन्हैया लाल ने और ही तरह लिखा है। जहांदार का काबुल से आना, बेगम का काबुल आप जाना, गाज़ीउद्दीन का नाता आदि। ये बातें और लेखकों से सही नहीं होतीं। हाँ, जमील का लाहौर में रहना और बेगम का कहा न मानना और बेगम तथा वज़ीर का सम्बन्ध बिगड़ना लिखते हैं। परन्तु यह बात सिद्ध है कि अब्दाली के इस आक्रमण का कारण बेगम थी, और गाज़ीउद्दीन ने बेगम को दुख दिया था और लाहौर के तख्त से वंचित किया था और वह अब्दाली के आने पर दिल्ली में थी।

३. चूहड़मल्ल का घर जब लूटा गया, तब आप तो दीवान जी उसी दिन के कष्टों में मर गए और बड़ा पुत्र बेगम ने गुस्ताखी के दोष में पहले ही कैद कर रखा था। बाकी रही दुखों की मारी माँ, जिसको भेदिये पंडित जी ने धोखा देकर लूटा था, वह बेचारी उदास होकर अमृतसर चली गयी और श्री हरिमन्दिर जी की सेवा में जा लगी। पंडित जी जो सरकार के भेदिए थे, जैसे के तैसे गरजते रहे। जब अब्दाली दिल्ली लूटकर लाहौर को लौटा तो सारे रास्ते में सिक्ख छापे मार-मार कर उसके पास से दिल्ली की लूट का माल, जितना बन पड़ा, छीनते रहे। जब वह लाहौर पहुँचा तो उसने सिक्खों को पकड़ने और मारने का हुक्म दिया। कई भेदिए छोड़े गए कि सिक्खों के टोलों का पता निकाल दें। अब्दाली को तुर्किस्तान में दंगे फसाद होने की खबर पहुँच गयी और वह ताबड़तोड़ उधर को चल पड़ा, पीछे तैमूर शाह उसका पुत्र जो लाहौर का हाकिम बना था, सिक्खों का बंदोबस्त करने लगा। पंडित जी फिर भेदिए बने। इन्होंने एक वन में ५० सिक्खों का पता दिया। लगभग सौ तुर्क बंदोबस्त के लिए भेजे गए, परन्तु वहाँ से पाँच सौ सिक्ख निकल पड़े, जिन्होंने उन सौ तुर्कों को हाथों हाथ पराजय दी। तैमूर शाह की कचहरी में भेदिए पर झूठी खबर देकर द्रोह का दोष लगा, घर बार लुट गया। आप मारे गये। जिनका भेदिया बना करता था, उनके ही हाथों यह भेदिया मारा गया।

मुनज्ज़म के हवाले की और आप जालन्धर पहुँचा वहाँ का राज्य नासिर अली खाँ[१] को दे दिया और आप दिल्ली पहुँच गया। जब अब्दाली दिल्ली पहुँचा तब आगे से आलमगीर सानी बादशाह दिल्ली ने उसको आदर सहित उतरने दिया और खातिर की, लड़ाई करनी और टोकना तो दूर की बात थी।

अब गाज़ीउद्दीन को अपना डर सताने लगा कि मैं मरा परन्तु आदमी चालाक था, शहज़ादा अली गौहर के पैरों में जा गिरा। उस भले आदमी ने वज़ीर की मुराद बेगम से सुलह करवा दी। अब बेगम ने बीच में पड़कर अब्दाली से उसकी जान तो माफ करवा ली, परन्तु वज़ीर को कई लाख रुपया जुर्माना देना पड़ा। बाकी अमीरों के सम्बन्ध में जो भेद बेगम बता चुकी थी अब उनसे बदला लेने का समय आया। उस ज़ालिम और धन के भूखे बादशाह ने लूट का कठोर हाथ उठाया। पहले इंतजामुद्दौला से नब्बे लाख रुपया माँगा, उसने कहा कि मेरे पास इतना रुपया नहीं है। अब्दाली ने उसके घर की तलाशी करवायी, तब इससे तीन गुना दौलत निकली, फिर बेगम ने कमरूद्दीन की विधवा शेलापुरी बेगम का भेद दिया, उसके घर से गहने जवाहरात कई लाख रुपये के निकले। अब्दाली को ज्यों-ज्यों धन हाथ लगे त्यों-त्यों उसकी भूख बढ़े और त्यों-त्यों उसने सारे अमीर बारी-बारी से लूटे। अब बदनसीब शहर की बारी आयी। दो महीने बादशाह दिल्ली रहा, दो महीने ही दिल्ली लुटती रही। घर-घर, मकान-मकान ढूँढा और तोड़ा गया। जब किसी के पास कुछ न रहा और कत्लेआम भी हो चुका, तब अब्दाली ने बल्लभगढ़ जाकर कत्लेआम की। फिर अब्दाली मथुरा की ओर

१. ये दोनों नाम, मीर मुनज्ज़म और नासिर अली खाँ, इन ओहदों पर लगाये गये। इसका ज़िक्र खालसा-तवारीख में है।

चला। वहाँ हिन्दुओं का बहुत भारी मेला लगा हुआ था और लाखों हिन्दू नहाते पूजा पाठ में लगे हुए थे। अचानक अत्याचारी पठान आ गये, बेरहमी और पत्थरदिली से कत्लेआम हुई, पलक झपकते प्रलय मच गयी। माँ को पुत्र की, पुत्र को माँ की होश न रही, निर्दोष मूली गाजर की तरह काटे गए, मंदिर लूटे गए और गिराए गये और हज़ारों हिन्दू कैद किए गये। फिर आगरे पर हल्ला हुआ, चारों ओर हाथ मारा। अनगिनत निर्दोष लोग मारे, जाटों की तबाही की गयी, चारों ओर गरीबी, महामारी और शून्यता फैल गयी। गरीबों और दुखी अनाथों की पुकार उठी और आकाश में फैल गयी। करतार के जबर्दस्त हाथों ने ज़ालिम दुर्रानी की फौज में हैज़ा भेजा। उधर पंजाब में से सिक्खों के बहुत शोर शराबे की खबरें पहुँचने लगीं, तब उसने भयभीत होकर लगामें मोड़ीं। दिल्ली आकर उसने मुहम्मद शाह बादशाह की पोती के साथ अपने पुत्र तैमूर का विवाह किया और मुहम्मद शाह की छोटी बेटी हज़रत बेगम के साथ अपना विवाह किया। फिर बादशाह से बहुत रुपया लेकर उसको नाम रख तख्त पर बिठाया तथा इंतज़ामुद्दौला को वज़ीर और नज़ीबुद्दौला को सेनापति बनाया। दिल्ली से चलकर अब्दाली लाहौर पहुँचा। यहाँ का हाकिम अपने पुत्र तैमूर शाह को बनाया। अब्दाली ने अब सिक्खों का पक्का प्रबन्ध करना चाहा पर कर न सका, और अपनी लूट को संभाल कर तुरन्त कंधार की ओर मुँह कर चल पड़ा। सिक्ख ऐसे समय पकड़ में नहीं आते थे। दूसरे उसे खबर पहुँची थी कि तुर्किस्तान में झगड़ा हो गया है, उसको जाकर सँभालना था। ऐलफिंस्टन लिखता है कि जो ज़ुल्म नादिरशाह ने किये थे, वही दूसरी बार किस्मत के मारे हिन्दुस्तान को इसके हाथों इस बार के आक्रमण में फिर से झेलने पड़े।

मुराद बेगम ने सबसे जी भर-भर कर बदले लिए परन्तु शत्रुओं से बदले लेते समय उन लाखों निर्दोष लोगों के साथ भी अत्याचार हो गए जिन्होंने इसका बाल भी बाँका नहीं किया था, परन्तु इसका अपना अंत क्या हुआ? आम पुस्तकों में से पता नहीं मिलता। शायद वह महामारी, जो इस समय कत्लेआम के कारण फैल गयी थी, इस तक भी पहुँची। यह भी ख्याल है कि जिन अमीरों को इसके हाथों दुख पहुँचा था उन्होंने चोरी विष दिलवाकर इसका काम पूरा किया। इस तरह मुरादों की उमंगों के साथ भरी हुई नामुराद रहकर मुराद बेगम बस हो गयी, न रूप, न दौलत, न हुकूमत, न जोड़ तोड़, कोई भी साथ नहीं गया।

-कांड २३-

जब अहमदशाह अब्दाली के आने की हवा उड़ी थी तब सैय्यद जमील लाहौर से भागकर दिल्ली जा घुसा था। रास्ते में सिक्खों ने इसकी बुरी दशा की। कई स्थानों पर लूटा और रोका, परन्तु रोता पीटता शेरों के वन में से पार हो ही गया। अब देश बिलकुल खाली हो गया था, सिक्खों ने मन भाते हाथ पैर मारे। करोड़ा सिंह का जत्था भी अगुआ जत्थों में से था। जैसा कि हम पीछे बता आये हैं कि जब सिंहों ने अब्दाली सुना तो मैदान छोड़कर जंगलों, वनों और पहाड़ों को भाग गए थे। इसलिए अब्दाली बेरोक-टोक लाहैर पहुँच गया था और वहाँ से मालामाल होकर दिल्ली जा घुसा था। बाद में नासिरुद्दीन जिसको वह जालन्धर दे गया था, सिक्खों पर ज़ुल्म करने लगा, गाँवों कस्बों में से गरीब मज़दूरों को पकड़ पकड़ कर खत्म करने लग पड़ा। यह देखकर सिंह क्रोधातुर हो निकल पड़े, और इकट्ठे होकर लड़ाई के लिए आ

डटे। आदम वाल के समीप घोर युद्ध हुआ; यथा :–

उतरे सिंह पहाड़ों तैथे इन्ह[१] अग्गाजा रोकिओ।
जानां तोड़ लड़े सिंह पूरे तुरकन कोठो भलकिओ।
तारा सिंह गैबा करोड़ा सिंह करम सिंह सो जाना।
जय सिंह आदिक तीनों भाई चड़त सिंह बलवाना।
जस्सा सिंह लौ चारो भाई था बघेल सिंह संगे।
सिंह दीवान जस्सा सिंह आहलू आदिक लड़े उतंगे।
खिच तेगे सिंह हल्ला कर जब परे भगी तुर्कानी।
गुरु कृपा ते इक इक सिंह ने दस दस कीने फानी।
सैद खान जाफर खाँ आदिक मरे रईस अपारे।
लूट खसोट देश को सिंह सभ होए बयासा पारे।

(पंथ प्रकाश, टाईप, पृष्ठ ११२)

इस जंग में बिजय सिंह एक ऐसे घेरे में फँसा हुआ था कि दस तुर्कों ने घेर लिया। यह अकेला वीर सबके साथ मुकाबला करता रहा। चार पाँच तो इसने गिरा लिये, परन्तु अपना शरीर छोटे-छोटे ज़ख्मों से बिंध गया। इधर का हाल देखकर नासिर अली स्वयं एक दस्ता लेकर आ धमका। बिजय सिंह वहाँ ही शहीद हो जाता, परन्तु उधर से जस्सा सिंह की नज़र पड़ गयी। वह एक दम सिंहों का टोला लेकर आ पड़ा। इस समय ऐसी घमासान लड़ाई हुई कि कुछ कहा नहीं जाता। खटाखट तलवारों पर तलवारें टकरा कर टुकड़े-टुकड़े होने लगीं, ढालों पर वार लेते समय ही नहीं निकल पा रहा था। बहादुरों को क्रोध ऐसा चढ़ रहा था कि ज़ख्मों पर ज़ख्म लगते जा रहे थे परन्तु उनको पता भी नहीं लगता था। दस बारह सिंह तो बहुत घायल होकर गिर पड़े और नासिर अली के

१. तुर्कों–नासिर अली और उसके अधीनस्थ सरदार शम्स खाँ, जफर खाँ आदि और तुर्क फौज।

केवल तीन साथी बाकी रह गये। यह देख सरपट घोड़ा दौड़ाकर वह आप भाग चला। उसके पीठ देते ही सारी तुर्क सेना भाग उठी। सिंहों ने थोड़ा पीछा कर के दरिया पार करने की की, क्योंकि उनका मनोरथ था अब्दाली को दम न लेने देना, हफड़ा दफड़ी डाले रखनी और अपने बहादुरों की रक्षा करनी। जस्सा सिंह ने घायलों को देखा, जिनमें तो प्राण थे उठवाकर साथ ले गये और बाकी की लाशों का ढेर बनाकर जंगल के सूखे वृक्षों के साथ रखकर आग लगा दी और आप ब्यास पार करके दम लिया।

अब एक मैदान में डेरा डालकर घायलों की जाँच होने लगी। शील कौर तथा अन्य बहिनें और दो-चार सिंह मिलजुल कर भाइयों की मलहम पट्टी करने में जुट गये। ये अभी फुर्सत में नहीं आये थे कि बिजय सिंह जी, जो सबसे पीछे धीरे-धीरे आ रहे थे, आ पहुँचे। घोड़े पर से बहुत मुश्किल से उतरे परन्तु उतरते ही बेसुध से होकर गिर पड़े। चौंककर शील कौर और रघुराज सिंह नाम के सिंह ने सँभाला, अच्छी साफ जगह लिटाया, एक सिंह पानी लेने दौड़ा। शील कौर, रघुराज सिंह घबराये हुए देखभाल कर रहे थे कि क्या हो गया है? चेहरे का रंग उड़ गया है। नब्ज मद्धम हो रही है और होश नहीं दिखायी देती। पानी के छींटे मारे। इतने में करोड़ा सिंह और जस्सा सिंह आ गये, बिजय सिंह ने आँखें खोलीं और 'धन्य करतार' धीमे से कहा। जस्सा सिंह ने कारण पूछा तो बिजय सिंह ने छाती पर हाथ रखा। वस्त्र उठाकर क्या देखते हैं कि एक साफा कसकर बाँधा हुआ है, उसको खोला तो एक और साफा अनगिनत तहें करके रखा हुआ[१] दिखाई दिया, यह उठाया तो एक गहरा घाव निकला, जिसमें से लहू की धार निकली और जस्सा सिंह के मुँह पर पड़ी।

---

१. लड़ाई में घाव लगा था, परन्तु बहादुर ने तुरन्त कपड़े रखकर बाँध दिया और लड़ता रहा था।

ज्यों ही यह धार निकली, बिजय सिंह पर बेहोशी छा गयी। इस समय सबको हाथ-पैर की पड़ गयी। साफा घाव पर रखकर घाव को हाथों से दबाया और एक दो सिंह तुरन्त नज़दीक गाँवों को दौड़े। गाँव में से एक वैद्य मिला, इसने आकर घाव देखा, दवाएँ लीं, बीच में दवा भरी, दबा कर बाँधा परन्तु लहू न रुके। वैद्य जी ने बताया पहले जब घाव लगा है तब छोटा था और गहरा नहीं था। ज़ख्म को बाँधकर बिजय सिंह ने जो दौड़-भाग और हद दर्जे की मेहनत की और कष्ट झेला है उससे ज़ख्म बढ़ गया और अंदर से नसें टूट गयी हैं, दिल बहुत करीब है, जिस में से लहू जल्दी बाहर को जोश मारता है, मेरी समझ में लहू बंद होना कठिन है।

फिर वैद्य जी ने शिलाजीत और मुमिआई दी, कुछ धातु मारी हुई अंदर डाली जिससे बिजय सिंह ने आँखें खोलीं, लाडले पुत्र को गले से लगाया और इतनी असीस दी 'बच्चा, तुम्हारे धर्म को कभी लाज न लगे।' फिर उसका माथा चूमा। शील कौर इस समय चरण दबा रही थी और ज़ारो ज़ार रो रही थी, बदन में ताकत नहीं थी, सिर में जोश नहीं था, आगे पीछे सब भूल गया, हैरानी और आश्चर्य के समुद्र में डूबी हुई है। पति ने धीमे से इशारा करके गले से लगाया और कहा, 'करतार शील धर्म बख्शी रखे।' फिर सभी सरदारों को बारीक सी फतेह बुलाई। शील कौर के मुँह से धीमे से निकला, 'हाय! मैं अकेली क्या करूँगी?' बिजय सिंह ने समझ लिया, ओठों में बोला :–'गुरु अंग संग', गुरु अंग संग'। फिर सिंह जी ने 'जपु सुनाओ' कहा। शील कौर आँसू पोंछकर विचार में आयी और बहुत मधुर स्वर में जपुजी साहिब का पाठ करने लग पड़ी। बिजय सिंह जी आँखें मूँद कर मद्धम मद्धम श्वास ले रहे हैं। सारे सरदार चुप्पी ताने बैठे प्यारे सज्जन के चेहरे की ओर ताकते

हुए करतार के रंगों को देख रहे हैं। लहू का बहाव बंद नहीं होता, कई कपड़े भरे जा चुके हैं, परन्तु लहू रुकता नहीं। शील कौर ने जब जपु साहिब का अंतिम श्लोक आरम्भ किया तब बिजय सिंह की आँखें एक दम खुलीं और पूरे ज़ोर से चारों ओर देखा। दोनों ओर से हाथ उठकर जुड़ गये। फिर ओंठ खुले और बहुत ज़ोर से फतेह का जयकारा गूँजा, उधर शील कौर ने :–

जिनी नाम धिआइआ गए मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।।१।।

का उच्चारण किया, उधर बिजय सिंह ने 'केती छुटी नालि' तीन बार कहा और बोला 'धन्य कलगियाँ वाला सच्चा गुरु 'धन्य साधु संगति! केती छुटी नालि, धन्य'।

इतना कहते ही लहू का फव्वारा ज़ोर से निकला, हाथ छाती पर गिर पड़े, आँखें और ओंठ बंद हो गए और बिजय सिंह मृत्यु विजयी हो गया। शील कौर उसके चेहरे में से जीवन सत्ता को उड़ते जाते देख रही थी 'केती छुटी नालि' पता नहीं कितनी बार कह चुकी थी, कहती ही जाती है और आँखें नहीं झपकती। चेहरा और ही तरह का होता जा रहा है, जब पति जी का अंतिम श्वास निकला, शील कौर का सिर 'केती छुटी नालि' के साथ ही गूँजता पति की छाती पर धड़कता गिरा और सतवंती शील कौर पति के साथ ही चली गयी, धर्म और प्यार अंत तक निभ गया।

'नानक सतीआ जाणीअनि जि बिरहे चोट मरंनि।।'

वाह शील! पतिव्रता हो तो तुम्हारे जैसी, पति की प्रेयसी हो तो तुम्हारे जैसी। पति पत्नी एक रूप होते हैं-यह बात तुमने निभाकर दिखायी।

करोड़ा सिंह ने जल्दी से बहिन का सिर उठाया, परन्तु बहिन कहाँ? बहिन तो पति के साथ ही चली गयी थी। उस समय बड़े-बड़े योद्धाओं और शक्तिशालियों की आँखों में प्यार का जल भर आया। सारा दल चुपचाप बैठा है, कोई आवाज़ नहीं निकलती, हाँ कोई थोड़ी आँसू की बूँदें गिरती हैं। नाशुक्री की नहीं, मनमुखता अथवा उसकी (परमात्मा) इच्छा मोड़ने की नहीं, केवल बिजय सिंह के प्रेम और शील कौर के सती होने पर तथा खालसा धर्म के भरोसे पर। **'नानक रुंना बाबा जाणीअै जे रोवै लाय पिआरो।'** बिजय सिंह का भुजंगी जो पलक झपकते ही माता पिता से रहित हो गया आँसू भरे नेत्रों से हैरानी में डूब रहा है। करोड़ा सिंह झोली में लेकर दिलासा देता और प्यार करता है। भुजंगी बहुत लड़ाई-झगड़े देख चुका है। माता पिता से पर्याप्त शिक्षा पा चुका है, परन्तु अचानक दोनों का बिछुड़ना गहरे और सच्चे प्यार की तरंगों को अंदर से हिलाता है। जत्थेदार का प्यार सहारा देता है बिछुड़ने और हौंसला बाँधने के आश्चर्यजनक रंग उसके पवित्र और कुमार दिल पर असर करते हैं। रुक कर फिर धीरे से माँ बाप की छाती पर सिर रखता है। एक बार यह बात मुँह से अत्यधिक दर्दनाक होकर निकली, 'अम्मा जीओ! आज क्यों यह प्याला अकेले ही पी लिया?' इस तरह के प्यार की कसक को जस्सा सिंह ने सँभाला और भुजंगी को गोद में सुलाये रखा। सारी रात गुरुवाणी का पाठ होता रहा। दिन चढ़ते ही बहुत आदर के साथ दोनों का अंतिम संस्कार करके अस्थियाँ और भभूत ब्यास नदी में प्रवाहित कर दीं। बिजय सिंह का बेटा बहुत शूरवीर हुआ। करोड़ा सिंह ने उसे बच्चों की तरह पाला और पंथ का एक लाल तैयार किया, जिसका जीवन नाम में पवित्र और ऊँचा हुआ और पंथ सेवा में सफल हुआ।

—इति—

अंतिम विनय

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के ज्योति ज्योत (स्वर्ग सिधारने) समाने के बाद, जो **१७६५** में हुआ, लगभग **४०** वर्ष तो बहुत और फिर थोड़े दुख खालसा ने झेले। जो कुर्बानियाँ कीं, जो परिश्रम कर के अपने पंथ और देश को अत्याचारी राज्य से मुक्त करने में ख़र्च की, उन जैसी शान वाली अपना आप कुर्बान करने की मिसाल और उपकार की खातिर न्योछावर होने का उदाहरण संसार के इतिहास में मिलना मुश्किल है। अगर कभी मात्र उसी सदी के हालात सिक्ख मर्द, औरतें, बच्चे पढ़ लें तो अपने जीवन ऊँचे करने के साथ अपने पूर्वजों के गर्व में इतने ऊँचे उठें कि कौमी प्यार और कौम के लिए न्योछावर हों और सिक्खी सिदक में बड़ों जैसे हो जायें। वे हालात देखने वालों के सीनों में गुम हो गए। कुछ फारसी लिखित इतिहासों में लिखे पड़े हैं, कुछ पते-ठिकाने वाले स्थानों पर और कुछ बे-पते ठिकानों पर पड़े हैं। पंथ ने इधर ध्यान नहीं दिया है, यह लापरवाही एक आत्महत्या है। ऊपर लिखे समाचार केवल मीर मन्नू के समय के अत्याचार और सिक्खों की अनेक मेहनतों और कारनामों में से एक उदाहरण-मात्र बताये हैं। अगर कौम खोज में लगकर बाबा बंदा जी, अब्दुसम्मद खान, खानबहादुर आदि के समय के अत्याचार ढूँढे तो अभी बहुत कुछ मिल सकता है, जिसको प्रकाशित करने पर कौम में नयी जान भर जायेगी।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन आधुनिक पंजाबी साहित्य के जनक पंजाब के संत कवि भाई साहिब भाई वीर सिंह के साहित्य और जीवन के प्रचार–प्रसार को समर्पित संस्था है। साहित्य सदन की ओर से भाई साहिब भाई वीर सिंह जी के सम्पूर्ण साहित्य को हिन्दी में प्रकाशित करने की व्यापक योजना बनाई गयी है।

हमारा विश्वास है कि हिन्दी में प्रकाशित यह साहित्य न केवल सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को व्यापक आयाम देगा, हिन्दी भाषी पाठकों को भाई साहिब के जीवन–आदर्शों से परिचित और प्रेरित होने की दिशा में भी अग्रसित करेगा।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली–110 001

फोन : 336 3510, फैक्स : 374 4347